हमारे पक्षी

हमारे पक्षी

लेखक

राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह

प्रस्तावना

इन्दिरा गांधी

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय
पुराना सचिवालय, दिल्ली—८

प्रस्तावना

मुझे यह देख कर बहुत खुशी हुई है कि चचा नेहरू की सलाह का अनुसरण कर श्री राजेश्वरप्रसाद नारायण सिह ने खास तौर से बच्चों के लिए पक्षियों के बारे मे यह किताब लिखी है। इससे एक पुरानी जरूरत पूरी हुई है।

अधिकाँश भारतीयो के समान मै भी पक्षियो में कोई खास दिलचस्पी नही लेती थी, जब तक कि मेरे पिताजी ने देहरादून जेल से श्री सलीमअली की दिलचस्प किताब मेरे पास नही भेजी। उस किताब ने जैसे मेरे सामने एक नई दुनिया खोल दी। तब जाकर मे यह समझ पाई कि मेरे लिए कितना कुछ अज्ञात था।

पक्षी-निरीक्षण एक बहुत दिल लगाने वाला और फलदायक काम है। इसके द्वारा पहले आदमी पक्षियो की विभिन्न किस्मो में तमीज कर सकना, उनके घर बनाने के तरीकों और उनकी आवाजो को पहचानना सीखता है। उसके बाद क्रमशः यह समझ मे आता है कि पक्षियो का भी छोटा ही सही, पर अलग-अलग व्यक्तित्व है और उनकी भी अपनी-अपनी आदते हैं।

अर्वाचीन सभ्यता भी पक्षियो की ऋणी है, क्योंकि मनुष्य ने सबसे पहले उन्ही की नकल में आकाश में उड़ने का प्रयत्न किया था।

यह हमारी खुशकिस्मती है कि भारत के शहरो तक मे पक्षी हमारे साथ रहते है । दूसरे देशो मे पक्षियो को देखने के लिए दूर देहाती इलाको मे जाना पडता है । मै चाहती हू कि हमारे बच्चे पक्षियो को पहचाने और उन्हे अपना दोस्त बनाए ।

मुझे आशा है कि यह छोटी-सी पुस्तक बच्चो मे पक्षियो के प्रति दिलचस्पी पैदा करेगी और इसके द्वारा बच्चे खूब खुशी हासिल कर सकेगे ।

प्रधानमन्त्री भवन
नई दिल्ली
२७ नवम्बर, १६५८

—इन्दिरा गांधी

भूमिका

हमारे प्रधानमंत्री और आप सब के प्रिय 'चाचा नेहरू' ने 'भारत के पक्षी' नामक पुस्तक की अपनी प्रस्तावना मे लिखा है—"अक्सर यूरोपीय बालक चिड़ियो और जानवरो, यहाँ तक कि फूलों और पेड़ों के बारे मे भी बहुत कुछ जानता है। हमारे बच्चों, या बडों में भी, कितने ऐसे होगे जो इन चीजो के बारे मे काफी जानकारी रखते हों!"

हमारे लिए सचमुच ही यह बड़ी लज्जा की बात है कि हम अपने प्रतिदिन के साथी पक्षियों की इतनी कम जानकारी रखते है। कुछ पक्षी ऐसे है जो हम से अलग वनो मे रहते है। उनकी बात हम छोड़ भी दे, तव भी दर्जनो ऐसी चिड़ियाँ है जो हमेशा हमारे साथ रहती है, हमारे घर के आँगन मे या आस-पास की झाडियो में फुदकती रहती है या सामने के पेड़ पर गाती है। फिर भी, हम मे से कितने लोग यह वता सकेगे कि उनकी कितनी किस्मे है, उनके शरीर की वनावट कैसी है, उनकी आदते क्या हैं? पक्षी-जीवन के प्रति हमारा यह अज्ञान दु:ख की वात है। कितना सौन्दर्य भरा है इन पक्षियो मे, कितनी मिठास है उनकी वोली मे! उन्हे देखकर हमें कितना आनन्द मिलता है! फिर हम उनके जीवन की वातों से उदासीन क्यों रहे?

संसार मे पक्षियो की संख्या वहुत वडी है। अव तक कुल तेईस हजार किस्म के पक्षियो का पता लग सका है, पर इनके

अलावा भी ऐसे बहुत से पक्षी है जिनका पता हम नही पा सके है ।

पक्षियो मे भी हमारी ही तरह गर्म खून बहता है । वे भी हाड-मॉस के प्राणी है । वे सामान्यत सुन्दर होते है, पर उन्हे यह सुन्दरता युगो के बाद प्राप्त हुई है । शुरू मे ये रेगने वाले छिपकिली की तरह के जीव थे, फिर चमगादड की भॉति उनके पख उग आए, फिर बाल उगे, जिससे आज ये ऐसे सुन्दर लगते है ।

ये हमे केवल मीठा गाना ही नही सुनाते, कीट-पतगो को खाकर उनसे हमारी फसल की रक्षा भी करते है । पक्षी न हो तो पृथ्वी ऐसे कीडो से भर उठे और हमारे जीवन की मुश्किले बढ जाएँ ।

देश के बच्चो मे भारतीय पक्षियो के प्रति रुचि पैदा करने और पक्षियो के बारे मे सामान्य जानकारी कराने के लिए मुझ से कहा गया कि मै पक्षियो पर कोई बालोपयोगी पुस्तक लिखूँ। सबसे पहले मुझे उन पक्षियो पर लिखना था जो हमारे रोज के साथी है यानी जिन्हे बच्चे हर रोज देखा करते है या जिनकी आवाज सुना करते है ।

मै इस उधेडबुन मे पडा कि ऐसे कौन से पक्षी है जो इस कसौटी पर पूरे उतरते है । पर इसके लिए मुझे अधिक माथा-पच्ची न करनी पडी । मेरी यह समस्या शीघ्र ही आप-से-आप हल हो गई ।

वर्षा का आरम्भ हो चुका था । रात मे घनघोर वृष्टि हुई थी । सुबह नीद टूटते ही मेरे कानो मे पपीहे की आवाज आई जो घर के पास के ही एक दरख्त पर जोर-जोर से पी-पी-हो की आवाज लगा रहा था । मै उठा और घर के सामने के सहन मे

यह देखने गया कि रात की वर्षा से फूलों के पौधों की क्या दशा हुई। अभी दो-चार ही कदम आगे बढ़ा था कि सामने के गूलर के पेड़ की एक झुकी हुई डाल पर एक काला-सा चोटीदार पक्षी बैठा हुआ नजर आया। उसका जोड़ा नीचे कीड़े पकड़ रहा था। काफी देर तक ये दोनों पक्षी वहाँ रहे, कीड़े पकड़ते रहे और एक दूसरे के साथ खेलते भी रहे। मुझे पहचानने में देर न लगी कि ये काले चातक थे। बगल ही में एक दूसरे वृक्ष पर नजर आया कुछ ढूँढता हुआ सा महलाठ जो 'चोर पक्षी' के नाम से भी विख्यात है। उसी रोज शाम के वक्त अपने एक मित्र के घर पर मोरों को उनके हाथ से दाने चुगते तथा नाचते भी देखा। कई नीलकण्ठ भी देखे जो पेड़ से झपट्टा मार कर नीचे रेंगते कीड़ों को हड़प रहे थे।

इसके बाद ही मुझे दिल्ली चला आना पड़ा। यहाँ मैं जिस बंगले में ठहरता हूँ उसका अड़ोस-पड़ोस पक्षियों से भरा हुआ है।

सुबह का वक्त था। मैं उठ कर बरामदे में बैठा हुआ चाय पी रहा था। कानों में कोयल की कुहू-कुहू की आवाज [illegible] रही थी। इतने में एक कौआ [illegible] सामने [illegible]
[illegible]

चिल्ला उठा पिजरे का तीतर—पतीला, पतीला। इतने मे सहसा वृक्ष के पक्षियो मे एक खलबली-सी मच गयी। वे भाग चले। देखा, सामने की एक डाल पर न जाने कहाँ से आकर बैठा हुआ था पक्षियो का दुश्मन, बाज।

शाम हुई और सयोगवश मुझे फिर उसी बरामदे मे बैठ कर कुछ समय बिताना पडा। इस बार दृश्य बदला हुआ था। झुड-के-झुड तोते नीम के पेड पर शोर मचा रहे थे। सामने के बहेडे के वृक्ष पर चील अपने घोसले के पास रह-रह कर ची-ई-ई-इ-इ बोल उठती थी। वैजन्ती के पेडो के नीचे एक महोख डोल रहा था जिसकी लबी दुम बाहर निकली हुई थी। एक दूसरे पेड़ पर भुंजगो की एक टोली उत्तेजित-सी नजर आती थी। बरामदे की उठी हुई चिक पर 'गौरैयो की चीची-चूँचूँ गूँज रही थी।

धीरे-धीरे सन्ध्या का घना अन्धकार चारो ओर फैल गया। चिडियाँ जहाँ-तहाँ चली गई। रह गए केवल दो-चार कबूतर बरामदे के छज्जो पर बैठे हुए, वह भी चुपचाप। मै एकाकीपन का अनुभव करने लगा। फिर भी वही बैठा रहा। कुछ ही देर मे पास के एक पीपल की डाल पर से उल्लू बोल उठा और काफी देर तक रह-रह कर उसकी उदास आवाज कानो मे आती रही।

मेरे नित्य के साथी और सुपरिचित पक्षी कौन है, इसे समझने मे मुझे अब देर न लगी और मैने इस पुस्तक मे इन्ही पक्षियो का परिचय देने का निश्चय किया जो आपके सम्मुख है।

—राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह

विषय-सूची
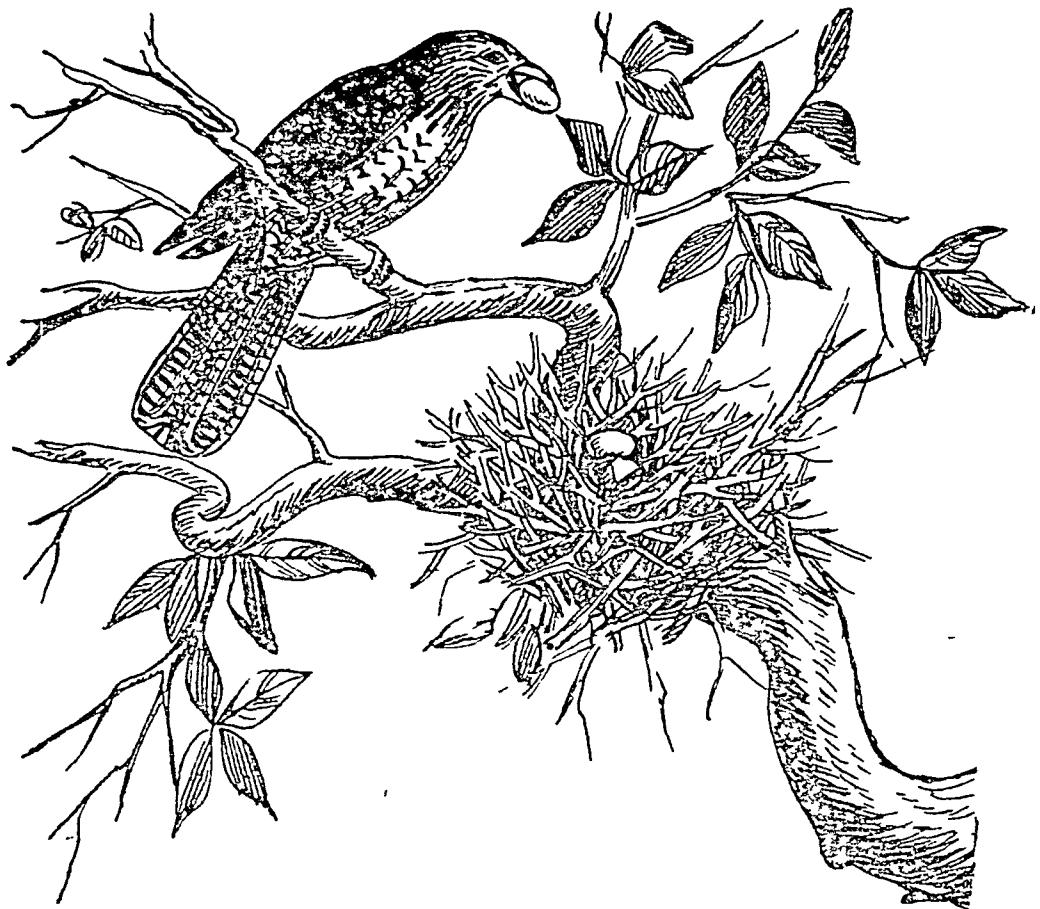
कोयल

विलायत मे जिस जाति की चिडियों को ककू कहते है उसी जाति का पक्षी कोयल भी है । पर विलायती ककू की और इसकी सूरत-शक्ल में बडा फर्क है। यही नहीं, बल्कि यह हिमालय की पहाड़ी कोयल से भी भिन्न है। देखने मे पहाड़ी कोयल अधिक सुन्दर होती है पर गाने में यह उससे कही बढ़ी-चढ़ी है, उस्ताद है, और इसीलिए हमारे देश के सभी पक्षियों से यह श्रेष्ठ मानी गई है। मनुष्य हो या पशु-पक्षी, उनका गुण ही उनको बड़ा बनाता है, केवल

खूबसूरती से ही कोई बडा नही होता । कविवर गिरिधरदास ने ठीक ही कहा है—

गुण के गाहक सहस नर, बिन गुन लहै न कोय,
जैसे कागा कोकिला, शब्द सुनै सब कोय ।
शब्द सुनै सब कोय कोकिला सबै सुहावन,
दोऊ कौ इक रग, काग सब भये अपावन ।
कह गिरिधर कविराय, सुनो हो ठाकुर मन के ।
बिनु गुन लहै न कोय, सहस नर गाहक गुन के ।।

वसत आने पर जैसे पेडो पर नए-नए पत्ते उग आते है और फिर वे तरह-तरह के फूलो से लद जाते है, वैसे ही कोयल के गले मे भी एक नई ताकत आ जाती है और वह कुहू-कुहू गाने लगती है । कभी इस वृक्ष पर कभी उस वृक्ष पर गा-गा कर एक शोर मचा डालती है । बच्चो को इसका गाना इतना प्यारा लगता है कि ये भी इसकी ही तरह कुहू-कुहू बोल कर इसकी नकल करने लगते है । वसत ऋतु से लेकर आषाढ-सावन के महीनो तक यह बोलती है, उसके बाद चुप हो जाती है । जाडो मे बिलकुल ही नही बोलती । इसे ठडक पसन्द नही है । अतएव सर्दियो मे बहुत सी कोयले दक्षिण भारत की ओर जहाँ जाडा कम पडता है, चली जाती है, फिर वसत के आते ही लौट आती है । स्वभाव की ये बडी शर्मीली होती है । अधिकतर पत्तो की ओट मे छिपी रहती है और हम इन्हे तभी देख पाते है, जब ये एक पेड से दूसरे पेड पर उडती हुई जाती रहती है ।

देखने मे नर और मादा एक-सी नही होती । नर का रग गहरा चमकीला काला होता है, चोच पीलापन लिए हुए हरी तथा आँखो

घोसले मे जाकर छल-छद से अपने अडे देती है तथा कौए के अडे को उठा कर दूर फेक आती है। यही नही, वल्कि एक ही घोसले मे एक से अधिक कोयले अपने अंडे पार आती है और इस तरह एक ही घोसले मे सात-सात अडे तक नजर आए है।

यथासमय अडो से बच्चे बाहर निकलते है। कौए बडे प्यार से उनका लालन-पालन करते है, पर जब समय आता है तो ये बच्चे उन्हें छोडकर अन्यत्र चल देते है। उनसे विदा तक लेने की आवश्यकता नही समझते। देखने मे ये कौए के बच्चो से अधिक चित्ताकर्षक होते है, अतएव ये कौओ के अधिक प्रेम-भाजन होते है। पर ये कौओ की जरा भी परवाह नही करते, शायद अपने असली माँ-बाप की तरह कौओ की आँख मे धूल झोंकने मे इन्हे भी बडा मजा आता है। यही नही, अक्सर घोंसले मे यदि कौए के कोई असली बच्चे होते है तो ये कौए की आँख बचा कर उन्हे चोच मार कर नीचे भी गिरा देते है और इस प्रकार उनकी मृत्यु का कारण बन जाते है।

मिस्टर ब्लाइथ नाम के एक सज्जन का कहना है कि एक बार उन्होने कौए के एक घोसले मे कोयल के दो बच्चो के साथ कौओ के तीन बच्चे देखे। एक सप्ताह के वाद वह फिर उन्हें देखने गए तो कौओ के बच्चो को गायब पाया। बात यह थी कि कोयल के बच्चों ने चोच मार-मार कर कौओ के बच्चो को, जिनसे वे कही ज्यादा तगड़े होते है, नीचे गिरा दिया था और तब बडे आनन्द से घोसले में वे अपने बचपन के दिन बिता रहे थे।

बहुत बार ऐसा देखा गया है कि कौए के घोसले मे अडे पार कर मादा कोयल कुछ दिन तक आस-पास के किसी पेड पर अड्डा

जमा कर देखती रहती है कि उसके अडो का क्या हाल है और उसके बच्चो का पालन किस तरह हो रहा है। यही नही, जैसे ही इन बच्चो के पर निकल आते है वह उन्हे साथ लेकर उड जाती है। अभी हाल की एक घटना है। हमारे मकान के सामने के एक वृक्ष पर एक मादा कोयल हमेशा बैठी रहती थी। मै समझ न पाता था कि वह इस तरह क्यो बैठी रहती है। एक दिन पेड के ऊपर से कोयल का एक बच्चा मेरी आँखो के सामने नीचे आ गिरा। मैंने उसे उठा कर पिजरे मे रख छोडा। उधर चार-पाँच कौओ ने शोर मचाना शुरू कर दिया। तलाश करने पर पत्तो की ओट मे छिपा हुआ कौए का एक घोसला दीख पड़ा। कोयल बगल के पेड पर क्यो बैठी रहती थी, यह अब मेरी समझ मे आ गया।

कोयल के बच्चे को पेड से गिरा देख कर मुझे एक किस्सा याद आ गया। कहते है, एक बार बोधिसत् नाम के एक राजा अपने बाग मे विचर रहे थे। उनके साथ उनका परम बुद्धिमान मत्री सुबोध भी था। सहसा राजा के आगे वृक्ष से कोयल का एक बच्चा गिर पडा। राजा ने देखा, उसके बदन पर चोच के घाव है तथा उनसे रक्त निकल रहा है। उसे देखकर राजा को बडा दु ख हुआ तथा मत्री से इसका कारण पूछा। मत्री ने सोचा, यह अच्छा मौका है, राजा समय-असमय बहुत बोला करते है जिससे राज-काज चलाने मे बडी कठिनाई होती है, अतएव इस घटना का सहारा लेकर उन्हे इस सम्बन्ध मे कुछ कहूँ। सो मत्री ने हाथ जोड कर कहा--"राजन्! यह कोयल के अडे से, जिसे मादा कोयल छल-प्रपच से कौए के घोसले मे पार आई थी, निकला हुआ कोयल का बच्चा है। कौए बड़े आनन्द से अपना

ही शिशु मान कर इसका लालन-पालन कर रहे थे और यह बडे सुख मे था, पर अपनी ही मूर्खता से इसे यह विपत्ति अपने सिर पर लेनी पडी है। बात यो है कि इसे अधिक और बेवक्त बोलने का शौक-सा हो गया, सो कौओ के सामने भी यह लगा मुह खोल कर बोलने। कौओ ने देखा कि इसकी बोली तो हमारी जैसी नही है, कोयल जैसी है। हो न हो यह हमारी आँख मे धूल झोंक कर यहाँ आ बैठा है। सो उन्होने चोच से मार-मार कर इसे घोसले से नीचे गिरा दिया और यह अपनी बेवकूफी का फल भोग रहा है।"

राजा बुद्धिमान था ही, फौरन इस घटना से उसने सबक सीख लिया और तब से वह कवि की इस उक्ति का पालन करने लगा---

'अति का भला न बोलना, अति का भला न चुप्प।'

मत्री का मनोरथ सफल हुआ तथा राजा ने शासन के कामों मे बहुत बोलना छोड दिया। राज्य के सारे काम अब बडी सुन्दरता से चलने लगे।

कोयल का कौए के घोसले के पास इस तरह बैठना खतरे से खाली नही होता। एक साहब का कहना है कि उन्होने अपनी आँखो के सामने एक बार कौओं को एक मादा कोयल को जान से मारते देखा था। फिर भी बच्चे का प्यार उसे कौए के घोसले के पास ले ही जाता है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, कोयल के बच्चे बडे होते ही कौए का घोसला छोड कर चल देते है तथा माँ-बाप की तरह ही उनसे शत्रुता का भाव रखते है। कौओ ने उन्हें पाला-पोसा, इसका

जरा भी खयाल नही करते हैं। कोयल-वंश के ऊपर यह कृतघ्नता का व्यवहार एक काला धब्बा-सा है पर जैसे चाँद पर काला धब्बा उसकी अलौकिक सुन्दरता मे छिप जाता है, वैसे ही कोयल की वाणी की मिठास उसकी इस कलंक-कालिमा को धो डालती है—

विविध गुणो के साथ दोष है
नही एक टिक पाता,
जैसे धवल चन्द्रकिरणो मे
शशि कलक धुल जाता ।

इसलिए हमारी यही कोशिश होनी चाहिए कि हम जितने ज्यादा गुण अपने मे ला सके, लाएँ ।
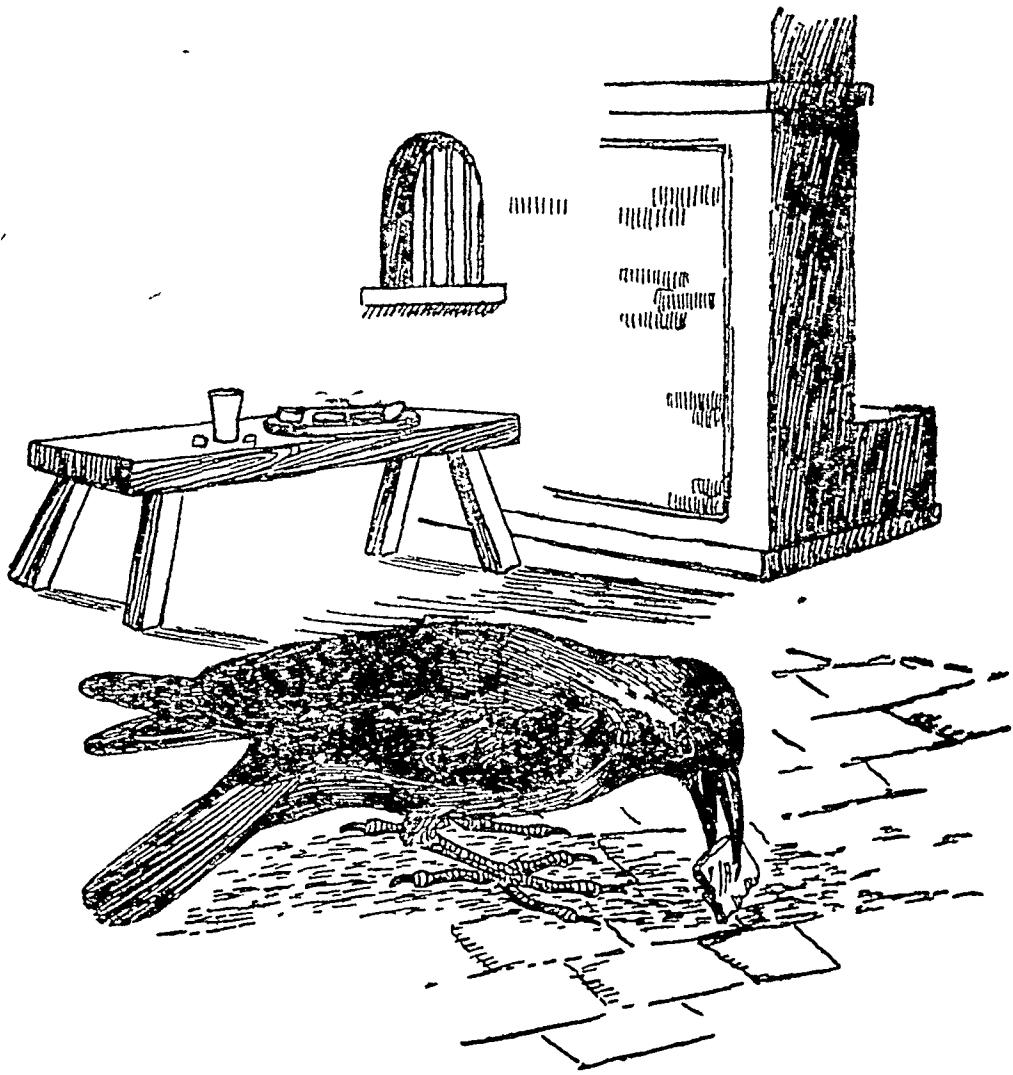
कौआ

इस देश मे शायद ही कोई ऐसा शहर या गाँव होगा जहाँ कौए न हो । कबूतरो और गौरैयो के समान हमारे घरो की कार्निस अथवा छज्जो पर ये भले ही रात न बिताएँ, पर सुबह होते ही ये शहरो और गाँवों मे आ पहुँचते है तथा घर-घर मे जाकर काँव-काँव की ध्वनि से हमारी नीद तोड देते है । अक्सर आप देखेंगे

कि शाम होने के कुछ देर पहले शहर और गाँव की ओर से कतार-के-कतार कौए अडोस-पडोस के बाग-बगीचो की ओर, कभी-कभी मीलो दूर तक चले जा रहे है। वहाँ यह दरख्तो पर रात बिताते है, और फिर पौ फटते ही उसी तरह झुड बाँधकर शहरो और बस्तियो की ओर लौट आते है तथा घर के द्वार अथवा आँगन मे काँव-काँव करना शुरू कर देते है। वही दिन भर डटे रहते है तथा अपनी छेडखानियो से हमे तग कर डालते है। घर-आँगन से रोटियाँ चुरा भागना तो इनका प्रतिदिन का काम है। कभी-कभी छोटे-मोटे बर्तन और गहने तक ले भागते है। घर के छोटे बच्चे यदि बैठे खा रहे हो तो ये फौरन उनके पास पहुँच जाते है और उनकी थाली-कटोरी अथवा हाथ से रोटी-पूडी ले भागते है। यही नही, कभी-कभी उनके साथ खेलते भी है। उनके करीब चले जाते है और बच्चो को उत्साहित करते है कि वे उन्हे पकडने की कोशिश करे। बच्चे आगे बढते है तो ये पीछे की ओर खिसक जाते है। फिर आगे आकर ऐसा हावभाव दिखाते है मानो इस बार वे जरूर ही पकड मे आ जाएगे। काफी समय तक बच्चो के साथ उनका यह खिलवाड चलता रहता है।

कौए हमे तग अवश्य करते है पर उनके साथ हमारा इतना घनिष्ठ सपर्क हो गया है कि उनके न रहने पर हम एक कमी-सी अनुभव करने लगते है---ऐसा लगता है मानो हम कोई चीज खो बैठे हो।

ढिठाई मे शायद ही कोई पक्षी उनका मुकाबला करने वाला होगा। कौए 'मान न मान, मै तेरा मेहमान' के सिद्धात पर चलने

वाले है। आप इन्हें लाख दुतकारें पर ये आपका घर छोड़ने वाले नही। ढेला मारने पर भी ये दो-चार कदम पीछे भले ही हट जाएँ पर घर छोड कर जाने वाले नही है। आप देखेगे कि वे तुरन्त अपनी जगह पर आ डटे है और कॉव-कॉव कर रहे है। हर पक्षी के दुश्मन और दोस्त, दोनो ही होते है। पर कौए का पक्षी-समाज मे कोई मित्र नही है। सबसे झगड़ा, सबसे अदावत। जिस किसी भी चिड़िया के घोंसले के पास यह चला, इसे दुतकार ही मिलती है। सभी इस पर अविश्वास करते है और इससे नफ़रत करते है। चोरी, सीनाजोरी, डाकेजनी आदि जो इसका स्वभाव है, इसका कारण है। बगुले मे कोई खास गुण नही है, पर वह भी मौका मिलने पर इस पर ज्ञान ही बघारता है --

काला कौआ कॉव-कॉव करे,
सफेद बगुला तब यो कहे--
तुझ काले का क्या है काम,
मै सफेद, मेरा बगुला नाम।

किन्तु कौओ मे आपस का मेल बहुत गहरा होता है। किसी कौए को आप मार डालिए, फिर देखिए सैकडो कौए वहाॅ आकर जोर-जोर से चिल्लाना शुरू कर देगे। यही नही, कभी-कभी मारने वाले पर चोट भी कर बैठते है। ये हमे एकता का आदर्श पाठ पढाते है।

यही नही, जहाॅ कही भी ये रहते है, साथ-साथ रहते है। कई वर्ष पहले की बात है, कलकत्ता मे बडे जोर का तूफान आया। उसके शात होने पर देखा गया कि कलकत्ता के मैदान मे पेडो के नीचे कई लाख कौए मरे पडे है।

कौओ मे एक विशेषता है जो शायद ही किसी और पक्षी में हो। वे कभी अपनी जाति के किसी कौए का ऐसा काम जिससे जाति पर धब्बा लगता हो, बर्दाश्त नही करते। अक्सर देखा जाता है कि किसी खुले मैदान मे उनकी सभा बैठी हुई है, दोषी कौआ बीच मे सिर झुकाए बैठा है। बाकी जोर-जोर से बोल रहे है, मानो उसे दोषी ठहराने की कोशिश कर रहे हो। अत मे अगर वह कसूरवार साबित हुआ तो वे चोच से मार-मार कर उसे अधमरा बना डालते है। यही उसकी सजा होती है।

कौआ हमारा सबसे अधिक जाना-पहचाना पक्षी है। कद मे यह कबूतर जैसा होता है। गरदन से लेकर सीने तक स्लेटी रग की चौडी पट्टी होती है, शरीर के बाकी हिस्से का रग काला होता है। नर और मादा की शक्ल मे कोई फर्क नही होता। इसे देशी कौआ या घरेलू कौआ कहते है। इससे भिन्न है वह जिसे आम तौर पर हम 'काग' कहते है। कही-कही जैसे कि देश के उत्तरी भागो मे इसे 'डोम कौआ' के नाम से भी पुकारते है। यह साधारण कौए से कद मे बडा होता है तथा इसके सारे बदन का रग गहरा काला और चमकीला होता है। इसकी आँखो की पुतली गहरी भूरी और पैर काले होते है। इसके नर और मादा मे भी कोई अन्तर नही होता। इसकी आवाज सामान्य कौए से कही ज्यादा कर्कश होती है तथा गाँव और वन, दोनो ही इसे समान रूप से प्रिय है। साधारण कौए को ग्राम और शहर ही अधिक भाते है।

कौआ तथा काग दोनो की आदते प्राय एक-सी होती है। पर जहाँ साधारण कौए हमेशा एक बडी जमात मे पाए जाते है, काग एक साथ दो-चार से अधिक शायद ही कही मिलते हो।

साधारण कौए का अडा देने का समय फरवरी से जुलाई तक है, बडे कौए या काग का फरवरी से नवम्बर तक। काग वर्ष मे दो-बार अंडे देता है। छोटे कौए के अडे नीलापन लिए हुए हरे रग के होते है जिन पर गाढे पीले और भूरे धब्बे होते है। काग के अडो का रग हरा होता है जिन पर गहरे वादासी रग की चित्तियाँ पडी होती है। अडे सेने का काम मादा और नर दोनो मिल कर करते है। एक जब अडा सेता है तो दूसरा बाहर बैठकर पहरा देता है। फिर भी कोयल इन्हे चकमा देकर अपने अडे इनके घोसले मे पार ही आती है, जैसा कि कोयल वाले अध्याय मे बताया जा चुका है।

इनके घोंसले बडे लेकिन बेडौल होते है जिन्हे बनाने मे ये दुनिया भर की चुराई हुई चीजो का इस्तेमाल करते है जैसे टीन के टुकडे, सोडावाटर की बोतलो के तार इत्यादि। कहते है, बम्बई मे एक बार देखा गया था कि कौओ ने अपने घोसले बनाने मे कई चश्मो के सोने के फ्रेमो का भी व्यवहार किया था जिन्हे ये पास के एक घर से चुरा लाए थे तथा जिनकी कीमत चार सौ रुपये थी। अधिकतर किसी बड़े पेड की चोटी पर ये अपने घोसले बनाते है। ये पेड गाँव या शहर के बीचो-बीच भी हो सकते है।

कौए के घोसले के पास जाना कभी-कभी बडा खतरनाक होता है। किसी को घोसले के पास देखते ही नर और मादा उग्र रूप धारण कर लेते है। एक अग्रेज लेखक ने लिखा है कि एक बार वह किसी कौए के घोसले से एक बच्चा चुरा कर ले चले। अभी वह रास्ते मे ही थे कि उनके खुले सिर पर किसी ने जोर से चोट की। मुड कर उन्होने देखा कि एक कौआ सिर पर मडरा रहा है।

वह तेजी से घर की ओर भागे । इतने ही में फिर उनकी बाईं एडी पर उससे भी सख्त चोट हुई । कई महीने तक वह इस चोट के घाव से तकलीफ पाते रहे ।

कौए और काग सर्वभक्षी होते है । रोटी-दाल, भात, तरकारी, फल-फूल, मॉस-मछली, सड़े हुए मृत पशु-पक्षी, कीडे-मकौडे, अन्य पक्षियो के नवजात अंडे, खेत की फसले---सभी कुछ चट कर जाते है । फसल को हानि पहुँचाने वाले कीडो को हड़प कर ये कभी-कभी हमारी खेती की रक्षा भी करते हैं । यही कारण है कि कुछ साल पहले जजीबार मे बाहर से कौए मँगा कर खेतो मे छोडे गए थे और मलय प्रायद्वीप मे श्रीलका से जहाज मे भरकर हजारो कौए भेजे गए थे ।

मानव-समाज का कौए से बडा घनिष्ठ सपर्क रहा है । कौए के सम्बन्ध मे हमारे बीच तरह-तरह की कथाएँ प्रचलित है । लोकगीतो मे इसका तरह-तरह से उल्लेख है तथा इनके बारे मे भॉति-भॉति की सही या गलत धारणाएँ फैली हुई हैं । कहते है, जब कोई आने वाला होता है या किसी की खबर मिलने को होती है, तो कौआ या काग दरवाजे पर आ-आ कर बोलता है । इसी तरह विश्वास किया जाता है कि आगे होने वाली अन्य घटनाओ की सूचना भी वह बोल-बोल कर पहले ही से दे देता है ।

कौए और काग हिन्दुस्तान के प्राय सभी हिस्सो मे पाए जाते है---मैदानो मे भी और पहाडी क्षेत्रो मे भी । सिक्किम मे १३-१४ हजार फुट की ऊँचाई पर भी ये पाए गए है, पर पहाड़ी कौए या काग की रूप-रेखा, कद आदि मे मैदानी कौओ से काफी

फर्क आ जाता है। जब-तब एक खास प्रकार का कौआ भी कही-कही देखा गया है जिसका सारा बदन सफेद होता है पर यह कम ही देखने को मिलता है।

इस देश मे केवल दो ही स्थान ऐसे है जहाँ कौए या काग नही होते--दक्षिण भारत मे कोडाइकनाल मे और उत्तर मे चित्र-कूट मे। पता नही इसका कारण क्या है।

कौए के सम्बन्ध मे एक रोचक कथा है। कहते है, एक बार वह कोयल का बाना धारण कर के चारो ओर लोगो की आँखो मे धूल झोकता फिरा। कई मास ऐसे ही बीते। जब वसत आया तो असली कोयल ने तो पचम स्वर मे गाना आरम्भ कर दिया पर कौआ चुप रहा। फिर तो उसकी कलई खुल गई और लोग उसे दुतकारने लगे। कहा भी है कि देखने मे एक-सा होने पर भी--'प्राप्तेषु वसन्त समये काक काक पिक. पिक'--वसत के आते हीं यह साफ हो जाता है कि कौआ, कौआ ही है, कोयल, कोयल, यानी बगैर गुण के महज ढोग करने से कुछ नही होता।

★
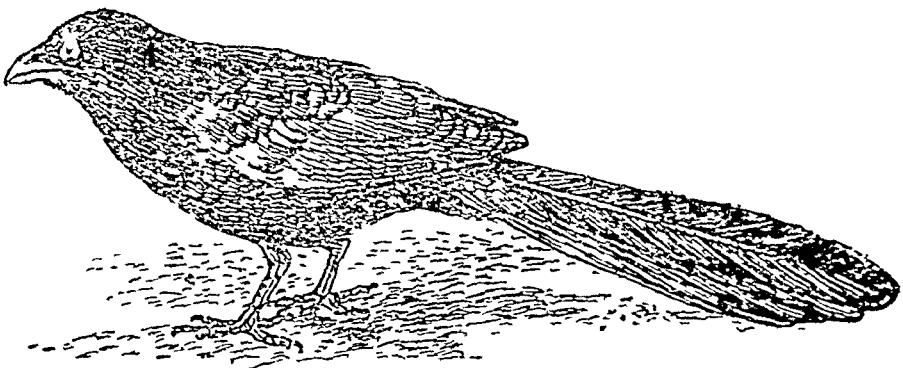
महोख

सुबह होते ही जब बस्तियो मे मुर्गे बॉग देना शुरू करते है तब हमारे मकान के आस-पास के बाग-बगीचे और बसवाडियो मे महोख भी बोलना शुरू कर देते है। पहले एक महोख बोलता है, फिर दूसरा, फिर तीसरा और इस तरह अलग-अलग पेडो पर कई महोख बोल उठते है। तभी हम समझ जाते है कि अब सवेरा हो गया, हमे बिस्तर छोड देना चाहिए।

महोख उन पक्षियो मे है जिन्हे हम हर रोज देखते भी है और जिनकी आवाज भी सुनते है। इसके शरीर का रग काला तथा डैनो का गहरा कत्थई होता है। चोच काली तथा टेढी होती है। आँखे लाल और पैर काले होते है। दुम काफी लम्बी होती है। नर-मादा मे कोई फर्क नही होता। इसकी बोली सुनने मे कोक-कोक या हुट-हुट जैसी लगती है। यह अधिकतर पेडो से चिपटा हुआ कीडे ढूँढता रहता है या झाडियो मे घुसा रहता है। जब-तब बाहर निकल कर भी घूमता है। अपनी

पूँछ के कारण जो लंबी, चौडी, काली तथा ऊपर बडी, नीचे छोटी होती है, यह तुरन्त ही पहचाना जा सकता है।

वैज्ञानिक ढग पर यह भी उसी जाति का पक्षी है जिस जाति का कोयल, पपीहा आदि किन्तु न तो यह उनके जैसा गवैया है और न इसकी आदतें ही उनकी जैसी है। यह स्वयं घोसला बनाता है। जून से सितम्बर तक इसके अडा देने का समय है। अडो का रग सफेद होता है। घोसला गुम्बज जैसा, आकार मे बडा होता है, फिर भी जब मादा घोंसले मे बैठी रहती है, उसकी लम्बी पूँछ बाहर ही निकली रहती है।
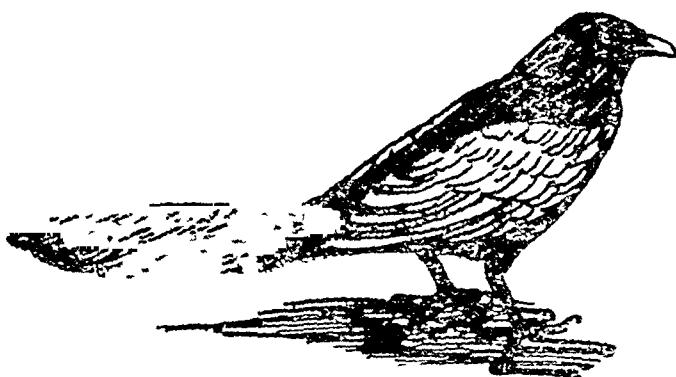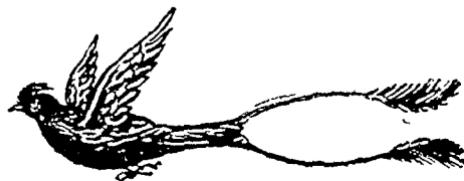
भुजंगा

कौए और कोयल के समान ही भुजगा भी एक काला पक्षी है जो डट कर कौए से लोहा लिया करता है, कद मे उससे छोटा होकर भी समय-समय पर उसे नाको चने चबवाता रहता है। कौए सबके घोसले से मौका पाकर अडे चुरा ले जाते है पर क्या मजाल कि वे भुजगे के घोसले के पास जाएँ। यह उन्हे ऐसी धता बताएगा कि छठी का दूध याद आ जाए। यही वजह है कि बहुत से दूसरे पक्षी वही जाकर घोसले बनाते है जहाँ भुजगे का घोसला होता है और वह बड़ी उदारता के साथ उनके घोसलो की भी निगरानी करता है। इसीलिए भुजगे को 'कोतवाल पक्षी' भी कहते है। पीलक तो खास तौर पर ढूँढते फिरते है कि भुजगे का घोसला कहाँ है जिससे वह भी वही बसेरा बनाएँ। कहावत भी है—

रहते तरु पर सग,
पीलक और भुजग।

एक बार मैने देखा कि दो भुजगे अपने घोसले के पास बैठे हुए थे। इतने मे उचक्के की तरह इधर-उधर ताकता हुआ एक कौआ वहाँ आ धमका। फिर क्या था! भुजगो की त्यौरियाँ चढ गई और वे उस पर टूट पड़े। कौआ भाग चला, भुजगे उसका पीछा

करते हुए उस पर चोंच मारते हुए उसे दूर तक भगा आए। फिर लौट कर ऐसे बैठे मानो दगल जीत कर पहलवान बैठे हुए हो।

भुजंगे का एक दूसरा नाम भी है--ठाकुर जी। यह इसलिए कि पौ फटते ही यह बडे मधुर स्वर मे गाना शुरू कर देता है, मानो प्रभाती गा रहा हो।

मकान के सामने के तार या खभो पर यह अक्सर बैठा रहता है। रेलवे लाइन के दोनो ओर के टेलीग्राफ के तारो पर भी बैठा हुआ मिलता है--कभी अकेला, कभी दो-चार के झुड मे।

अंग्रेजी मे इसे 'किग-क्रो' कौआ राजा कहते है। कद मे यह बुलबुल जैसा होता है। रग गहरा चमकीला काला होता है। पूँछ लंबी और दो सिरो की होती है मानो बीच से चीर दी गई हो। पूँछ के पर सख्या मे दस होते है। नोक पर कभी-कभी सफेद चित्ती भी होती है। इसकी आँख की पुतली लाल तथा पैर और चोच काले रग की होती है। नर और मादा की रूप-रेखा मे कोई फर्क नही होता।

इसका मुख्य भोजन छोटे-छोटे कीडे-मकोडे है। हवा मे उडते हुए पतगो को पकडकर यह चट कर जाता है। बहुधा शाम को यह किसी तार या खंभे पर चुपचाप बैठा रहता है। यही समय है जब कीडे-पतगे ज्यादातर बाहर निकलते है। उन्हे देखते ही यह बिजली की तरह उन पर टूट पडता है और पलक मारते उन्हें गले के नीचे उतार देता है।

चरती हुई गाय, भैस आदि पशुओ की पीठ पर बैठना इसे बहुत पसंद है। अक्सर उस पर बैठा हुआ धूप मे चोच खोले यह हाँफता हुआ नज़र आएगा।

भुजगे का घोसला देखने मे सुन्दर प्याले के समान होता है। इसके अडा दने का समय अप्रैल से अगस्त तक है। अडे सख्या मे चार या पॉच होते है तथा रग मे बिलकुल सफेद या लाल छीटो

के साथ सफेद। अडा देने के दिनो मे इसका सिर हमेशा गर्म बना रहता है। बात-बात पर यह दूसरे पक्षियो से लड बैठता है—खासकर कौओ से।

पॉच हजार फुट तक की ऊँचाई के पहाडो पर भी भुजगा पाया गया है। हमारे देश के प्रत्येक हिस्से मे यह मिलता है। इसके नाम भी कई है—बगाल मे फिगा, दक्षिण मे बुचगा, उत्तर भारत मे भुजैल आदि।

इसकी बिरादरी का एक दूसरा पक्षी भृ गराज है जो कद मे इससे दूना होता है। यह अधिकतर पहाडो पर पाया जाता है। इसके सिर पर परो की एक कलगी होती है, पूँछ टेनिस के बल्ले के आकार की काफी लम्बी तथा समूचे बदन का रग नीलापन लिए हुए काला होता है। कही-कही भृ गराज की चोच सफेद तथा डैनो मे भी सफेदी पाई जाती है। पर ये इने-गिने ही होते है।

गाने मे भृ गराज बहुत दक्ष होता है। इसके स्वर मे अत्यन्त मिठास है। दूसरे पक्षियो के गिरोह मे रहना इसे बहुत

पक्षीतीर्थम की चीलो का जोड़ा
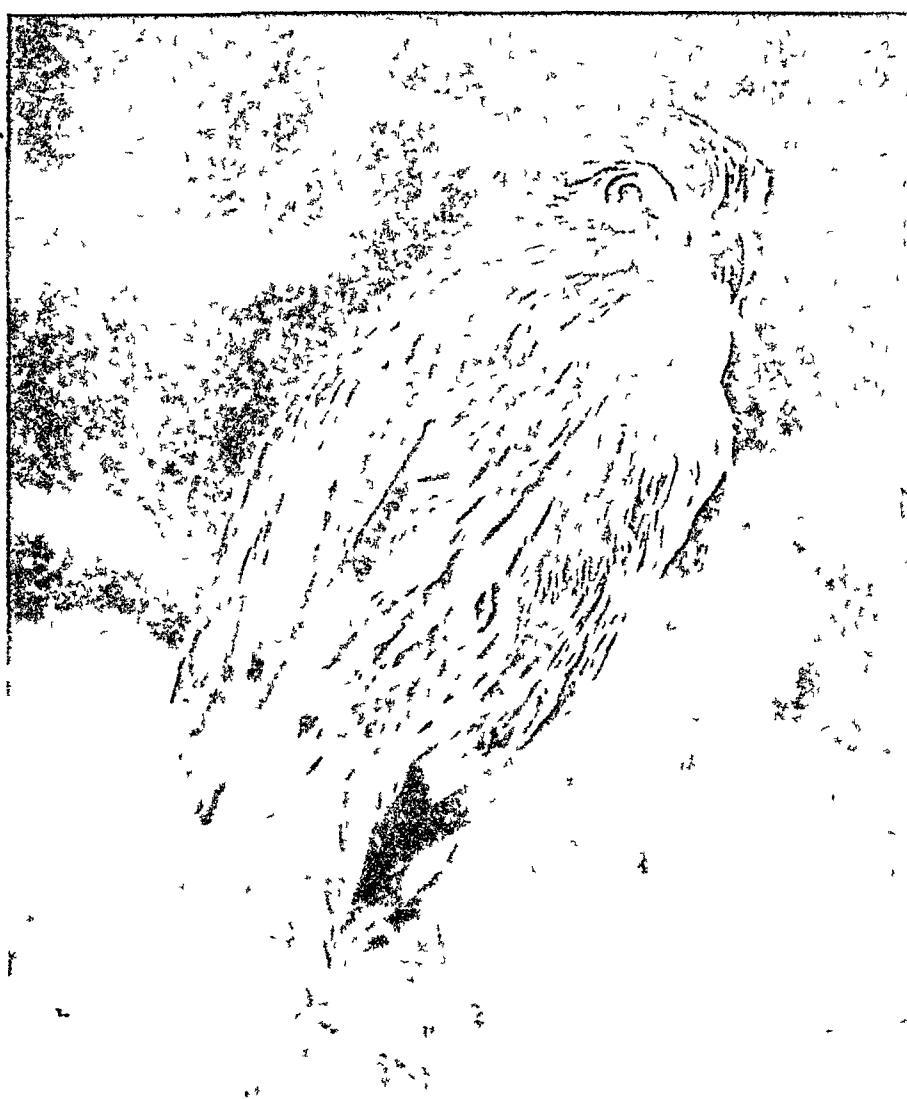
वहरी

जगली काग

कौआ

कौआ अपने घोंसले में पहुंचता हुआ

पालतू तोता

लक्का कबूतर

कबूतर—नर
और मादा
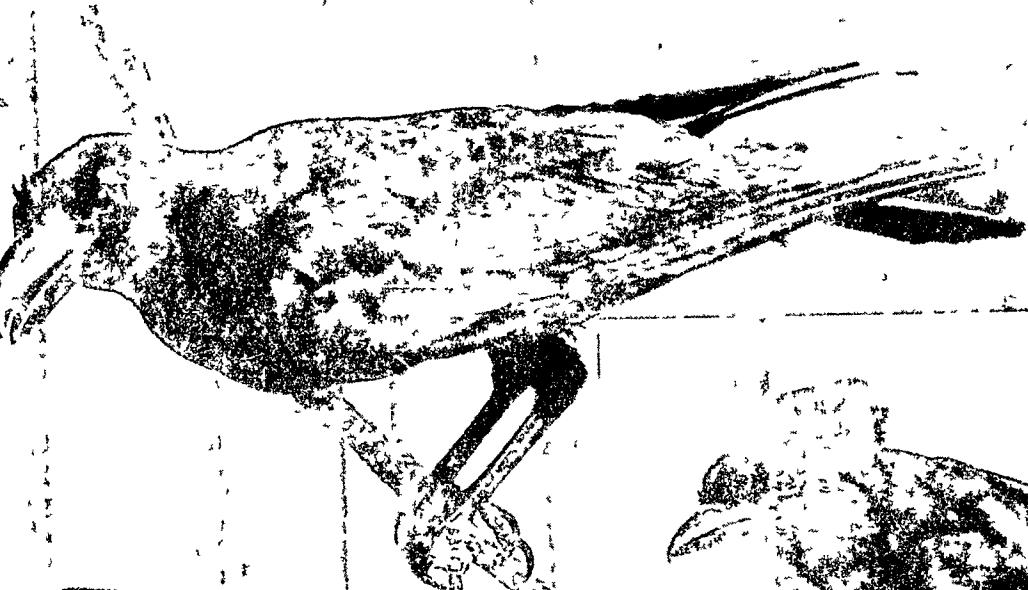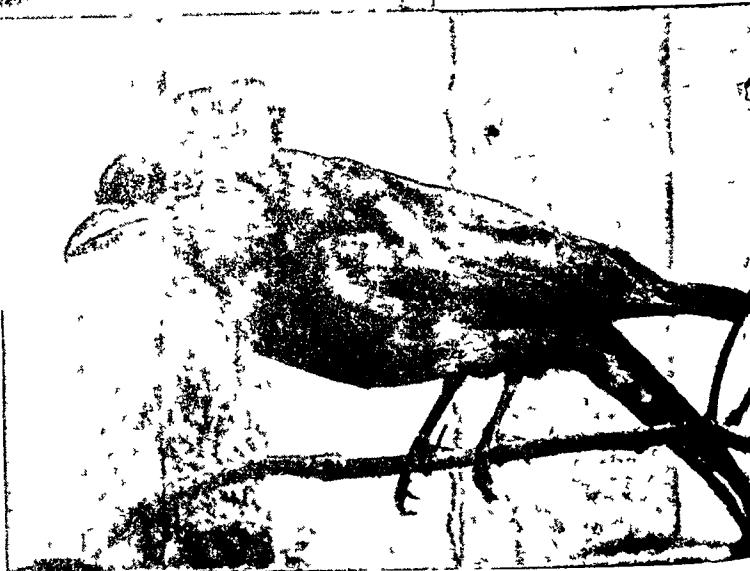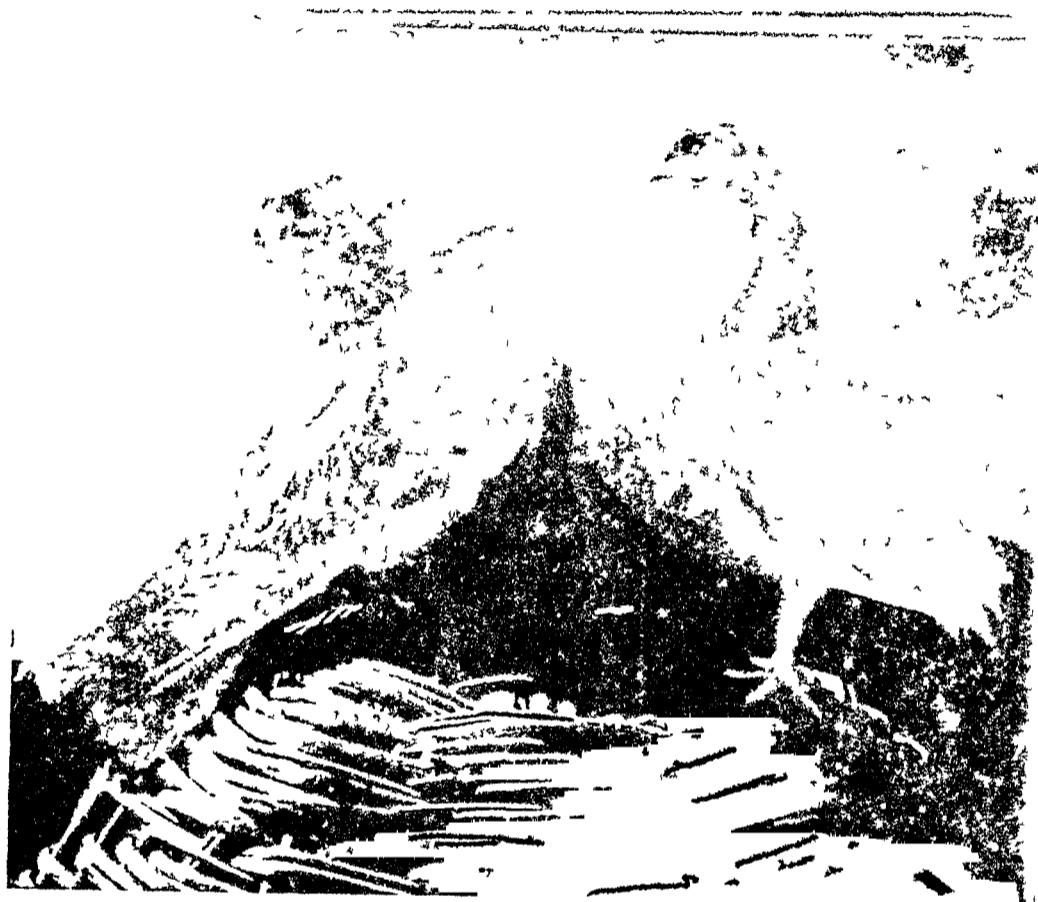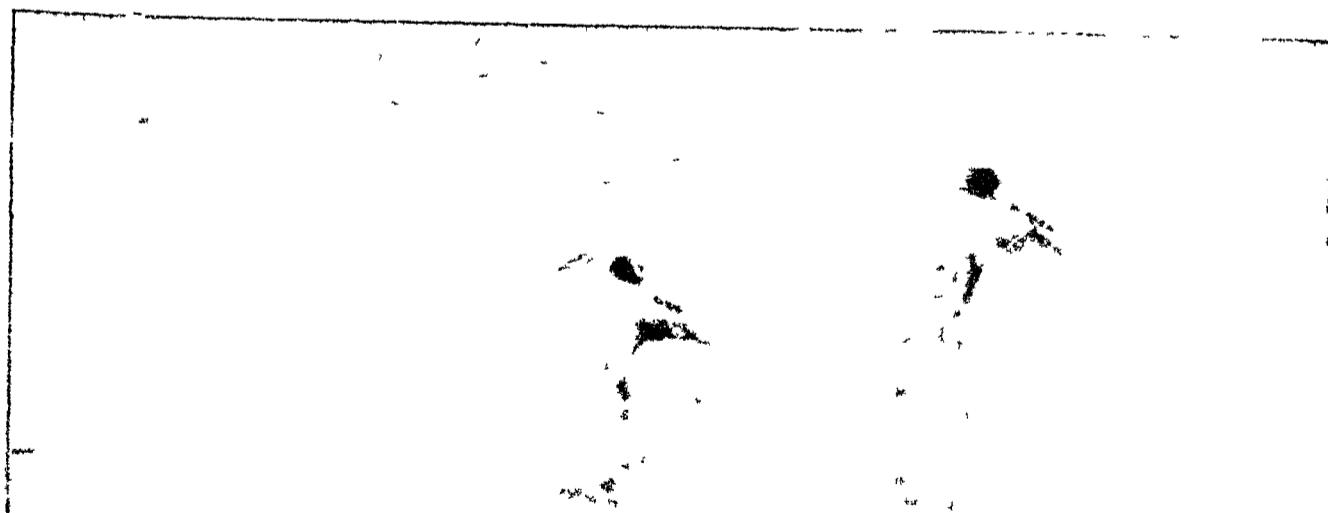
उल्लू परिवार

पसद है तथा अन्य पक्षियो के गाने भी उनके ही स्वर-लय में यह बड़ी खूबी से गा लेता है। यही नही, जानवरों की बोली की भी नकल भृंगराज बडी खूबी से करता है और कभी-कभी दूसरों की बोलियाँ बोलकर वन के पक्षियों तथा जानवरों को बड़े अचरज मे डाल देता है। कहते है ऐसा करने में इसे बडा मजा आता है।

पिजरे में यह बडी आसानी से पाला जा सकता है। हाँ, पिजरा बडा होना चाहिए तथा भोजन के लिए कीड़ो का अच्छा प्रबन्ध होना चाहिए। तभी यह जीवित रह पाता है तथा इसके गले में जोर आता है।

पहाडों में रहने वाले आदिवासी इसकी पूँछ के लंबे तथा सुन्दर परों की कलगी सिर पर धारण करते है। ये पर देखने मे बहुत सुन्दर होते है।

इसके अंडा देने का समय अप्रैल-मई के महीने है। सभी अंडे एक-से नही होते, पर ज्यादातर ये सफेद रंग के होते है जिन पर गुलाबी चित्तियाँ होती है। ये बहुत कुछ बुलबुल के अंडो से मिलते है।

M 67 M of I & B—3
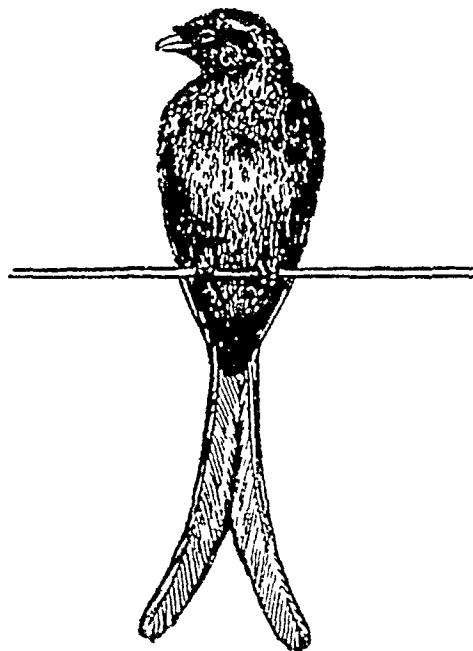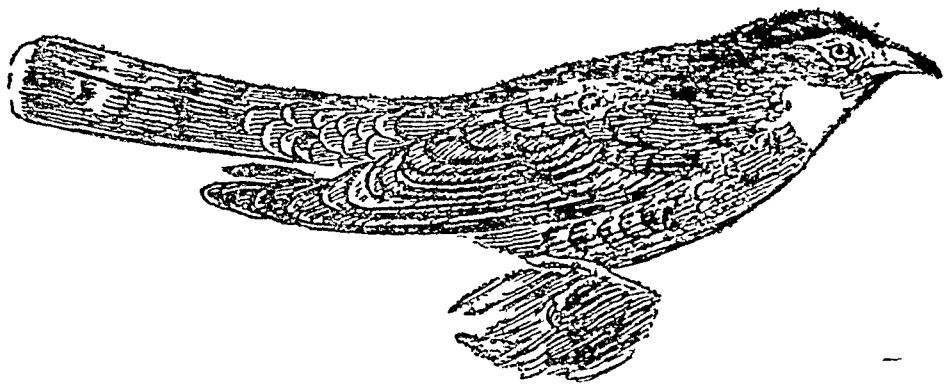
पपीहा

भारतवर्ष मे गाने वाले पक्षियो मे कोयल के बाद पपीहे का स्थान है। उसी की तरह यह भी वसत के आते ही गला ऊँचा कर के गाना शुरू कर देता है। फर्क इतना है कि जहाँ ग्रीष्म ऋतु मे कोयल के गले की ताकत मे कमी नही आती, पपीहे की ध्वनि मन्द पड जाती है। वर्षाकाल का आरम्भ होते ही यह पुन जोरो से 'पी-पी-हो' की रट लगाने लगता है जबकि कोयल के गाने मे वह पुराना ओज नही रह जाता। कहते है, यह तब तक बोलता रहता है जब तक कि स्वाति-नक्षत्र मे बरसने वाले जल से इसकी प्यास नही मिट जाती। पता नही इस कथन मे कहाँ तक सचाई है, पर इतना जरूर है कि स्वाति-नक्षत्र (कार्त्तिक-अगहन) के बाद पपीहे का बोलना एक प्रकार से रुक जाता है। जाडो मे कोयल की तरह यह भी मौन व्रत धारण कर लेता है।

देखने मे पपीहा हू-बहू शिकरे जैसा होता है—शरीर का ऊपरी हिस्सा तथा डैने सलेटी भूरे, नीचे का हिस्सा चोच से छाती तक सफेदी लिए हुए हल्का सलेटी, पेट के पास भूरी धारियाँ,

लम्बी दुम, दुम के पास से कुछ दूर तक छोटी सफेद धारियाँ, दुम के बीचोबीच कुछ काली और सफेद आड़ी पट्टियाँ और छोर पर एक उजली धारी, आँखे पीली, चोच हरापन लिए हुए पीली, जिसके आगे का भाग काला, पैर पीले । यही इसकी रूप-रेखा है । लम्बाई १५ से १६ इच तक की होती है । नर और मादा के रंग-रूप मे कोई फर्क नही होता । कहते है, इसके गले मे एक छेद होता है, जब यह पानी पीने लगता है तो बहुत-सा पानी इसके गले से निकल जाता है । यह फल और कीडे-मकोड़े खाता है । रोएदार कीड़ो को भी जिन्हे और पक्षी नही खाते, यह चट कर जाता है ।

पपीहे का उडना भी ठीक शिकरे जैसा होता है । इसीलिए इसे पहचानना बडा मुश्किल होता है । पपीहे बगाल से लेकर राजस्थान तक पाए जाते है । पजाब में भी कही-कही मिलते है । जाड़ो मे कोयल की तरह कुछ पपीहे भी दक्षिण भारत की ओर चले जाते हैं ।

पपीहे की एक और जाति है जो देखने मे चमकीले काले रग की होती है । पख के सिरे के करीब इसके एक सफेद आड़ी धारी होती है । दुम लम्बी होती है । पेट सफेद होता है । सिर पर एक काली चोटी होती है तथा पाँव पर बाज जैसे पर होते है जो रग मे सफेद होते है । यह वर्षा ऋतु के आने पर बोलना शुरू करता है । भूरे पपीहे की तरह यह भी 'पी-पी-हो' ही बोलता है पर बडे क्षीण स्वर मे । आवाज मे काफी मिठास होती है । आदते इसकी भूरे पपीहे जैसी ही होती है । इसे 'चातक' कहते है और कही-कही 'काला-पपीहा' भी । यह जाड़ों के आते ही अफ्रीका

की ग्रोर जहाँ सर्दी बहुत कम पडती है, चला जाता है पर वर्षा ऋतु के ग्राते ही पुन इस देश को लौट ग्राता है। इसे लौटा हुग्रा देखकर ही हम समझ जाते है कि ग्रब बरसात शुरू होने मे देर नही है।

दोनो ही जाति के पपीहे साधारणत' घोसला नही बनाते। चरखी के घोसले मे ग्रडे पार ग्राते है। ग्रडे का रग चरखी या सतबहिनी के ग्रडे के रग के समान ही नीला होता है। दोनो के ग्रडा देने का समय ग्रप्रैल से जून तक है। कई बार देखा गया है कि पपीहे ग्रपने ग्रंडे रखकर चरखी के ग्रडो को खा भी जाते है।

ग्रक्सर शिशु पपीहा चरखी के दल के साथ क्वार के महीने मे घूमता हुग्रा नजर ग्राता है। पर एक दिन ऐसा भी ग्राता है जब यह उन्हे चकमा देकर नौ-दो-ग्यारह हो जाता है। वे इसे ढूंढती फिरती है ग्रौर यह किसी पेड पर बैठा हुग्रा 'पी-पी-हो' की रट लगाता रहता है।
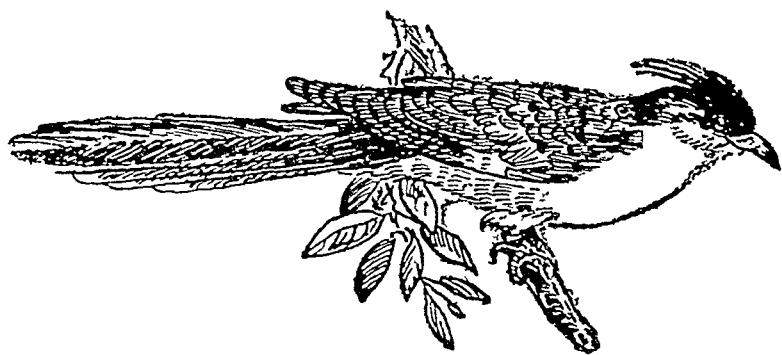
चरखी या सतबहिनी

घर के आस-पासकी झाडियों मे अथवा आँगन के तुलसी के चौतरे के इर्द-गिर्द हम अक्सर मटमैले रग की कुछ चिड़ियों को कूद-कूद कर चलते हुए देखते है जिनकी सूरत-शक्ल बड़ी कुरूप लगती है। यही चरखी या सतबहिनी है जिसके और भी कई नाम हैं—सतभइया, कचबचिया, छतरिया आदि। कद में यह प्राय: दस इंच की होती है जिसके बदन का ऊपरी हिस्सा गंदा मटमैला, नीचे का पीलापन लिए हुए राख के रग का होता है। आँख की पुतली में पीलापन लिए हुए सफेदी होती है, चोच तथा पैर प्याजी होते है जिनमे पीलापन मिली हुई सफेदी रहती है। दुम बड़ी तथा ढीली होती है जो इसके शरीर की कुरूपता को और ज्यादा बढ़ा देती है।
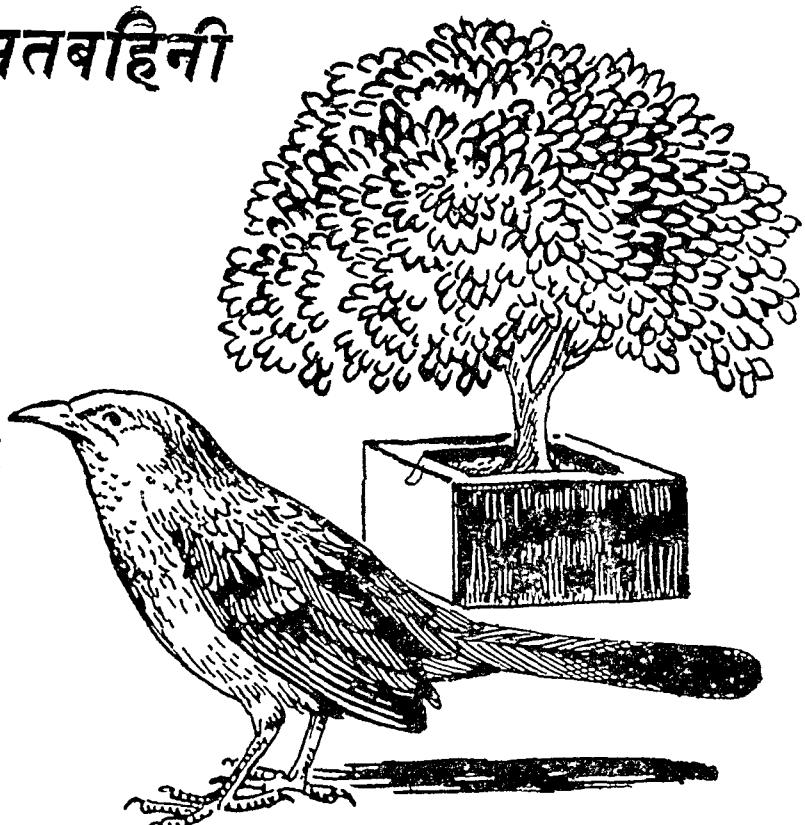
उड़ने की ताकत कम होने की वजह से ही यह अपना ोंसला दस फुट से ज्यादा ऊँचाई पर नही बनाती और न पेड ी किसी ऊची डाल पर बैठी हुई नजर आती है।

सिवाय इसके कि यह कीडे-मकोडे खा-खा कर उनकी बाढ को रोकती है, यह हमारे लिए किसी काम की चिडिया नही है, पर इसमे कई ऐसे गुण है, जो हमारे लिए अनुकरणीय है । सतबहिनियो का सबसे मुख्य गुण उनके आपस का भाईचारा है । ये खूब लडती है, झगडती है, पर औरो के मुकाबले मे एक बनी रहती है । समय आने पर आपस मे मिलकर अपने दुश्मनो—बाज, कौओ—का सामना करती है और उन्हे इनकी सम्मिलित शक्ति के सामने बार-बार सिर झुकाना पडता है । वैसे भी ये सदा एक साथ रहती है—अधिकतर सात-सात, आठ-आठ के झुड मे—और किसी साथी के पिछड जाने पर तब तक आगे नही बढती जब तक कि वह गिरोह मे आकर शामिल नही हो जाता । यदि इसका तमाशा देखना हो तो आप किसी सतबहिनी को पकड कर पिजरे मे डाल दे । आप देखेगे कि बाकी सतबहिनियाँ भी पिजरे के पास आकर भीतर घुसने की कोशिश कर रही है । शायद ये इस सिद्धात पर चलने वाली है कि—

सदा नर्क मे साथ रहना भला है,
नही है भली स्वर्ग की भी इकाई ।

अक्सर आप इन्हे चोच से एक दूसरे का सिर खुजलाते या पर साफ करते देखेगे ।

ये सारे काम—बच्चो का पालन-पोषण तक—मिल-जुल कर करती है । एक अग्रेज लेखक का कहना है कि उन्होने एक बार छ सतबहिनियो को एक ही घोसले मे बारी-बारी से बच्चो को दाना खिलाते पाया था ।

इनका दूसरा गुण इनकी हिम्मत है। ये बाज आदि भयंकर पक्षियो से भी बड़ी बहादुरी के साथ लड़ पड़ती है और उन्हें मार भगाती है।

ये रह-रह कर 'कचबच' शब्द करती रहती है और इस तरह अपने भूले-भटके साथियो को अपना पता देती रहती है। इनकी आदत है कि ये रात मे एक-एक पहर पर जोरों मे 'कचबच-कचबच' बोल उठती है जिससे हमे समय का ज्ञान होता रहता है।

इनके अडा देने का समय मार्च से सितम्बर तक है। अडो की सख्या ३-४ होती है, रग नीला होता है। पपीहे अपने अंडे इनके घोंसले मे पार जाते है और इस तरह अंडों की यह सख्या बढ जाती है। ये सीधे-सादे पक्षी है, अत अंडा रखने मे पपीहे को कोयल की तरह चालाकी से काम नही लेना पडता। सीधे जाकर

वह अंडे पार आता है और ये खुशी से उन्हे सेती है और पपीहे के बच्चों को भी बड़ा होने पर साथ-साथ लिए फिरती है। बरसात के दिनों मे अक्सर सतबहिनियो के झुड मे पपीहो के बच्चे भी घूमते-फिरते नजर आते हैं। फिर एक दिन ऐसा आता है जब वे इन्हे छोडकर उड़ जाते है और ये हाथ मलती रह जाती है।

सतबहिनी की भी कई किस्मे है पर जो किस्म साधारण तौर पर हमारे यहाँ पाई जाती है, वह यही है जिसका यहाँ उल्लेख किया गया है। दक्षिण भारत की सतबहिनी कद मे इससे लम्बी होती है।

आपस के मेलजोल, भाईचारे का ये हमे उपदेश देती है, और यही कारण है कि कोई दूसरा पक्षी इनका बाल बाँका नही कर सकता।

बुलबुल

हमारे मकान के आस-पास के छोटे-छोटे पेड़ो और झाडियो में चहकने वाली यह चिड़िया बड़ी ही सजीव होती है, इसमें सन्देह नही। बुलबुल कभी देर तक एक जगह नही बैठती और न कभी चुप बैठती है। जब देखिए उछल-कूद रही है या चहचहा रही है।
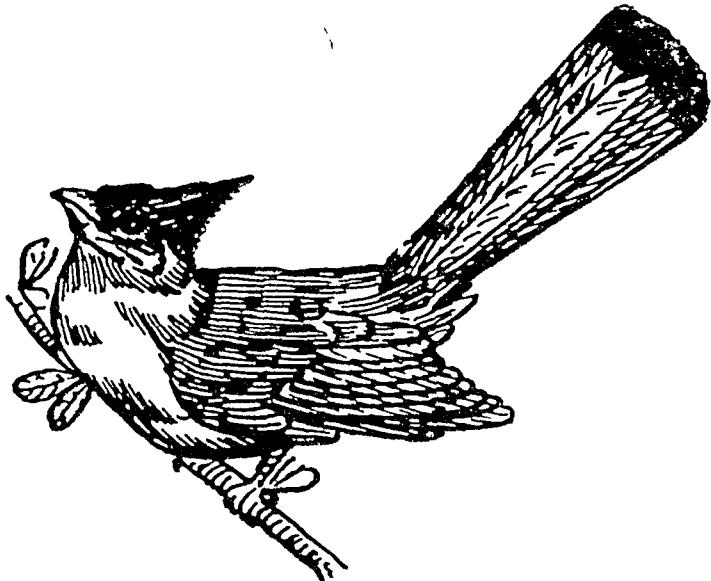
बुलबुल के गाने का जिक्र किताबो मे बहुत जगह आया है। बहुत से लोगो का मत है कि हिन्दुस्तान की बुलबुल गाती नही। केवल फारस की बुलबुल ही गाती है। यह सही है कि फारस की 'हज़ारदास्ता' बुलबुल प्रसिद्ध गायिका है, हजार तरह से गाती है, पर आप यदि ध्यान देगे तो देखेगे कि हमारे देश की बुलबुल भी शाम के वक्त अक्सर वृक्ष की डाल पर बैठी हुई बड़े मधुर स्वर मे कुछ बोल रही है, गा रही है। उस समय उसका चहकना बन्द रहता है। हाँ, इतना जरूर है कि यह फारस की बुलबुल की तरह जोर से और रात भर नही गाती और न उतनी ज्यादा मिठास ही इसकी बोली मे है, फिर भी शाम का इसका यह गाना कानो को बडा प्यारा लगता है।

फारस वाली बुलबुल कश्मीर के एक-दो इलाको मे पाई गई है। कहते है, नूरजहॉ ने फारस से कुछ हजारदास्ता बुलबुले मॅगाकर रखी थी और यह उन्ही की सतान है।

हमारे देश मे भी बुलबुल की अनेक उपजातियॉ है। इनमे दो-तीन अधिक मशहूर है। सबसे अधिक सख्या मे पाई जाने वाली बुलबुल वह है जिसे हम गुलदुम बुलबुल के नाम से पुकारते है। कद मे यह ९ इच की होती है। सिर पर का तुर्रा, गला और पूँछ एकदम काली होती है। शरीर का बाकी हिस्सा भूरा होता है। पीठ के पखो का किनारा पीला, दुम का सिरा सफेद और दुम के नीचे का हिस्सा गाढा लाल होता है। यह इस देश की सामान्य बुलबुल है। इसके नर-मादा मे कोई फर्क नही होता।

दूसरी किस्म की बुलबुल 'सिपाही बुलबुल' है। इसके सिर की काली चोटी बडी और घनी होती है तथा दोनो गालो पर सुर्ख बालो क़े गलमुच्छ, दुम पर सफेद धब्बे, पीठ भूरी, छाती सफेद, पैर काले होते है। सिपाहियो की तरह गलमुच्छ होने के कारण ही यह 'सिपाही बुलबुल' कहलाती है।

तीसरी जाति की बुलबुल सफेद गालो वाली है जो पर्वतो पर पाई जाती है।

इनके अलावा भी और कई तरह की बुलबुले पाई जाती है जिनमे एक का वदन सिवाय काले सिर के, पीले रग का होता है। दूसरे का गला नीला और शरीर हरा होता है। दोनो ही देखने मे काफी सुन्दर होती है।

पुराने जमाने मे मुर्गा, तीतर, बटेर आदि की तरह बुलवुल लड़ाने की प्रथा भी इस देश मे जोरो से प्रचलित थी। पर अब

इसमें अडे दिये। इन्ही दिनो एक दिन मैंने देखा कि एक कौआ घोंसले के पास आकर बैठ गया, फिर तो बुलबुलो का क्रोध उमड आया और वे उस पर टूट पडी। वह भाग चला, ये अहाते के बाहर तक उसका पीछा करती हुई भाग आई। इन्हे सफाई का कितना खयाल है, यह इस बात से जाहिर होता है कि जब बच्चे अडो से निकल आते है तब ये अडो के टुकडे चोच मे रखकर अहाते से बाहर फेक आया करती है--कभी इसके भीतर नही गिराती।

बुलबुल को अपने बच्चो से बडा प्रेम होता है। जब उनके पर निकल आते है तब माँ-बाप उन्हे अपने साथ जोर-जोर से बोलते हुए ले चलते हैं तथा कई दिनो तक उन्हे साथ-साथ रखकर उन्हे उड़ना-बोलना सिखाते है।

बुलबुलो को फलो से भी खास प्रेम है। फलो के पकने पर कभी-कभी घटे भर मे ये वृक्ष के तमाम फल, यदि वे आकार मे चेरी की तरह छोटे हो, चट कर जाती है। कभी-कभी फसल के खेत-के-खेत समाप्त कर देती है--नाज का दाना-दाना चट कर जाती है। बगाल की एक मशहूर लोरी है जिसे माताएँ गा-गा कर बच्चो को सुलाती है--

छेले घुमालो, पाड़ा जुडालो
बरगी एलो देशे,
काल बुलबुलि ते धान खेलो
खाजना देबो किशे।

इसकी अतिम दो पक्तियो मे वह कहती है--कल बुलबुले खेत के सारे धान खा गई। अब सरकारी कर किस तरह

मैना

मैना इस देश के प्रसिद्ध परिचित पक्षियो मे है तथा सभी भागो मे पाई जाती है। वास्तव मे यह भारत का अपना पक्षी है। एशिया के कुछ देशो के सिवाय और कही यह देखने को नही मिलती। इसीलिए इसका अग्रेजी नाम भी मैना ही है।

इसकी बहुत-सी किस्मे है जिनमे सबसे अधिक जानी पहचानी देशी मैना है जो सभी जगह देखने मे आती है। इसे 'किलहटा' मैना भी कहते है। यह प्राय ११ इच की होती है। नर और मादा के रूप-रग मे कोई फर्क नही है। यह खैरे रग की चिडिया है जिसका सिर, गर्दन, पूंछ और सीना काले रग के होते है। पेट और डैने के कुछ हिस्से, दुम का सिरा तथा निचला हिस्सा सफेद होता है। दुम गोलाकार होती है तथा इसके बीच के दो परो के सिरे सफेद नही होते। आँख भूरी, चोच तथा आँख के नीचे का उभरा हुआ गोश्त और पैर पीले होते है। यह नाज के दाने, कीडे-मकौडे आदि सब कुछ खाती है। जून से अगस्त तक इसके अडा देने का समय है।

दूसरी चिडियो के त्यागे हुए घोसले मे या हमारे मकान मे ऊपर के किसी कोने मे बेडौल घास-फूस के घोसले बना कर यह अडे देती है । अक्सर हमारे मकानो मे इसके घोसले दिखाई देते है । कभी-कभी
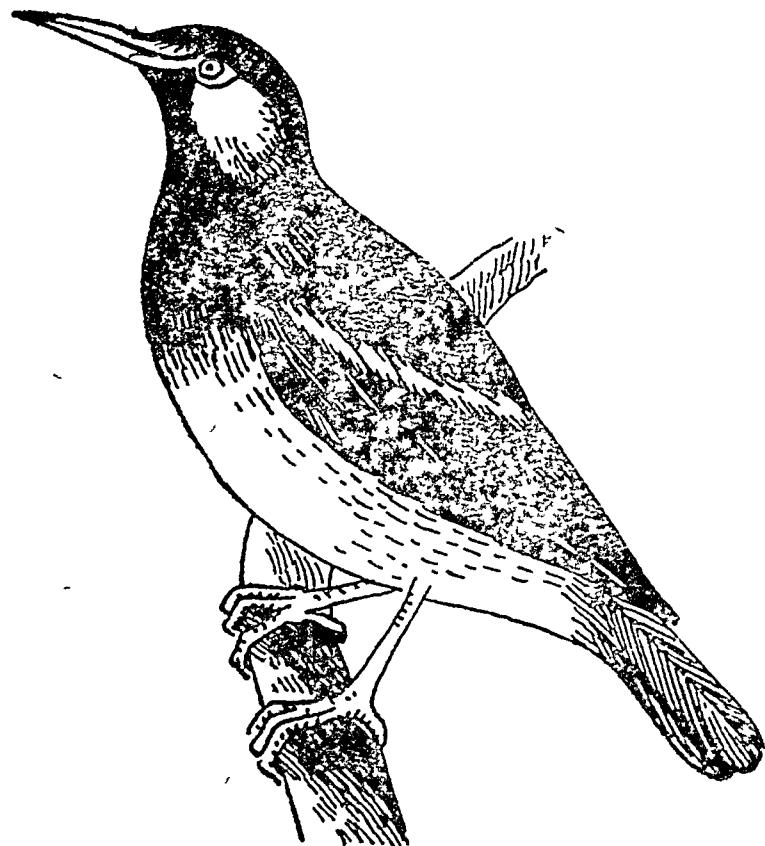
यदि दरवाजा खुला रहा तो यह हमारी अलमारियो के भीतर भी घोसला बना डालती है। इसके अडो की सख्या चार या पाँच होती है । ये रग मे नीले होते है। यह हमारे यहाँ की बारहमासी चिडिया है ।

दूसरे किस्म की मैना 'दरिया मैना' है जिसे 'गगा मैना' भी कहते है । यह देखने मे बहुत कुछ देशी मैना से मिलती है । इसकी आँख के चारों ओर का चमड़ा लाल होता है। रग सलेटी भूरा होता है तथा डैने पर का धब्बा और दुम के परो के सिरे गुलाबी होते है, सफेद नही । नदियों के कगार मे यह झुड के झुड घोसले

बनाती है। इसके घोसले की एक विचित्रता यह है कि भीतर ही भीतर एक से दूसरे मे जाने के दरवाजे होते है, चाहे वे घोसले सख्या मे सौ ही क्यों न हो, पर ये इन रास्तों के जरिए एक दूसरे से मिले होते हैं।

तीसरी जाति की मैना 'गुलाबी मैना' है जिसका सिर, सीना और डैने गहरे काले तथा शरीर का बाकी हिस्सा सुन्दर गुलाबी रग का होता है। देखने मे यह बहुत सुन्दर होती है।

चौथी यानी 'तेलिया मैना' झुडो मे हमारे यहाँ पहाडो से जाडे मे आती है। इसका रग खूब चमकीला काला होता है। फूल का रस इसे बहुत प्यारा है। इसे 'तिलोरी' भी कहते है।

पॉचवी जाति की मैना 'अबलखा' है जिसका शरीर काला, गाल सफेद होता है। ऊपरी हिस्सा, दुम के पर और डैने खैरापन लिए हुए काले रग के होते है, दुम की जड के ऊपरी हिस्से पर सफेदी होती है। डैनो पर एक सफेद आाडी लकीर होती है। बदन का निचला सारा हिस्सा हल्की बादामी झलक के साथ राख के रग का होता है। आँख की पुतली तथा पैरो मे पीलापन लिए सफेदी होती है। चोच नारगी–भूरी होती है जिसका निचला हिस्सा सफेद होता है। चोच की जड से दोनो आँखो के नीचे होता हुआ एक गोलाकार सफेद चित्ता होता है। कद मे यह गगा मैना के बराबर होती है। घोसला यह पेडो पर बनाती है–-प्राय दर्जनो एक साथ।

छठे किस्म की मैना 'पहाडी मैना' है जो औरो के ठीक विपरीत गाँव या शहर से दूर जगल मे रहना अधिक पसद करती है।

बुलबुल बच्चो को शिक्षा देते हुए

भोजन के समय बच्चो के साथ मैना
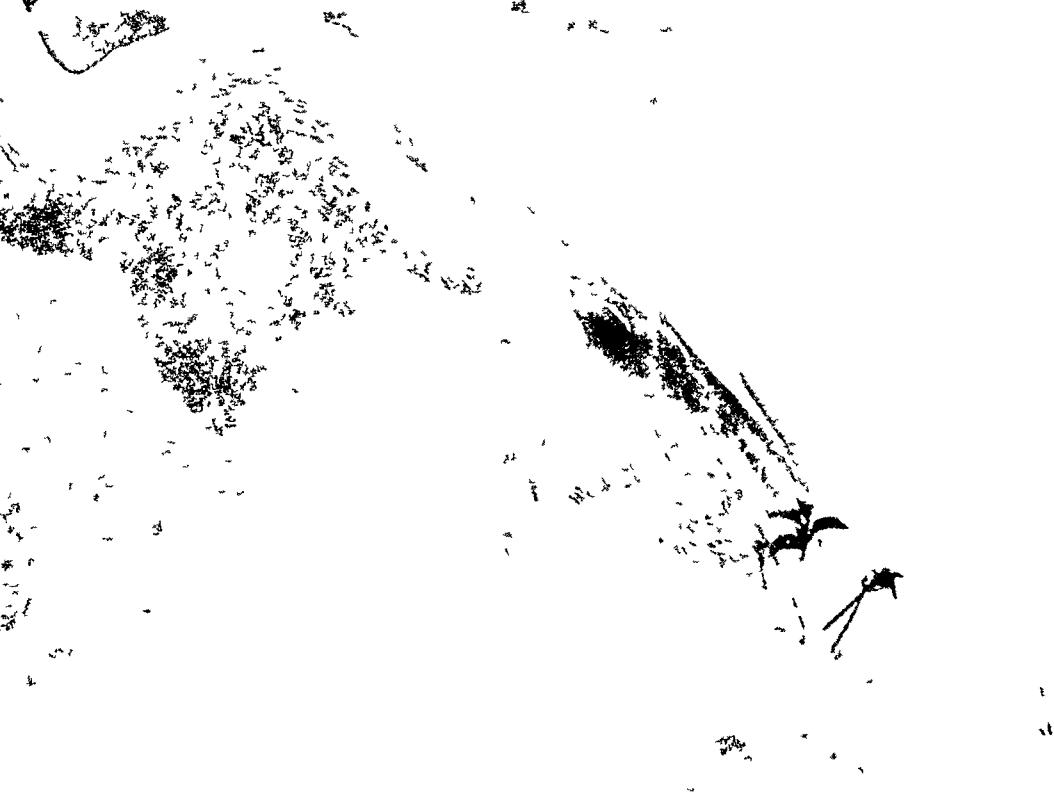
सफेद मोर
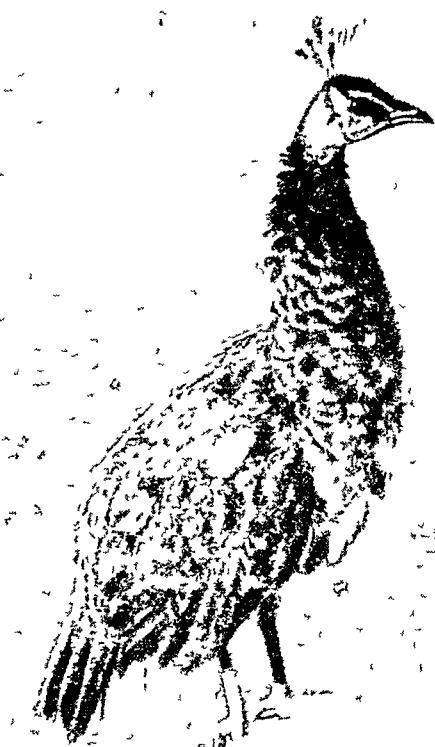
मोर का बच्चा
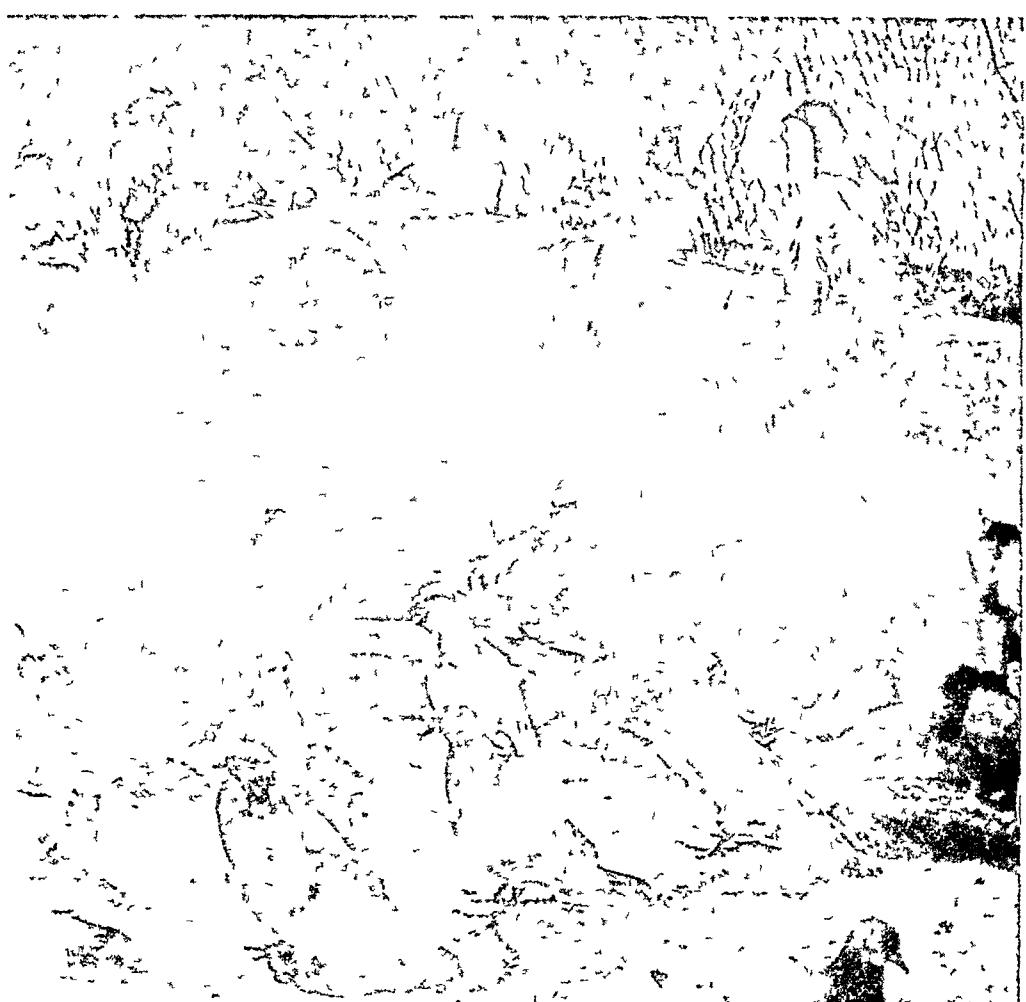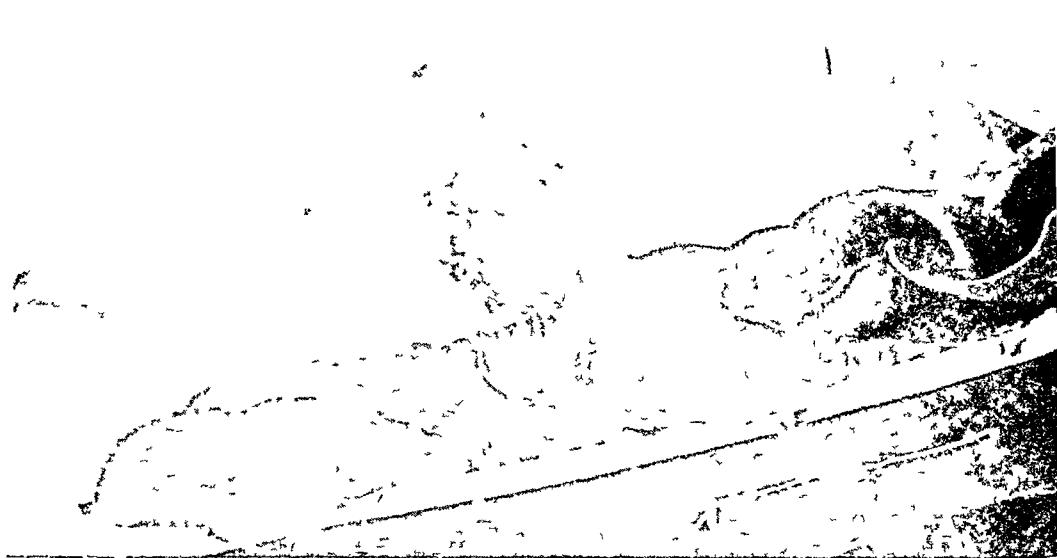
फल इसके आहार है। परो का रंग गाढा काला होता है। डैने की जड पर एक बड़ा सफेद चित्ता होता है। चोच नारगी, आँखे काली, पैर और सिर का चमड़ा पीले रंग का होता है। नाक पर खडे बाल होते हैं जो औरों के नही होते। दुम के परों के सिरे बीच के दो परों को छोड़ कर सफेद होते है। अधिकतर पहाडो पर पाई जाने वाली इस मैना की एक विशेषता यह है कि यह दूसरे गाने वाले पक्षियों के गाने बड़ी आसानी से सीख लेती है और हू-बहू उन्ही जैसा गाती रहती है। पिजरे मे पाली जाने वाली मैना यही है जो मनुष्य की बोली, रास्ते से जाती हुई मोटर का हार्न, हारमोनियम बाजे की आवाज आदि की नकल भी बड़ी कुशलता से कर लेती है तथा दिन भर इसे सुनाती रहती है। शायद इसी के सम्बन्ध मे किसी कवि ने दु:ख भरे शब्दों मे कहा था—

मैना तू बनवासनी, पड़ी पींजरे आन।

सातवी किस्म की 'पवई मैना' है जिसे ब्राह्मणी मैना भी कहते है। इसका सिर काला होता है जिस पर कलगी जैसे घने काले पर होते है। डैनो के पर भी काले होते हैं। सिर और गले के बगल के हिस्से तथा नीचे के पर चमड़े के रंग के, जांघ तथा दुम के नीचे के कुछ हिस्से पर सफेदी होती है। गला और छाती के पर लम्बे होते है। शरीर का शेष हिस्सा ललछौह भूरा होता है। दुम गोलाकार होती है जिसके बीच के दो परो को छोड कर बाकी परो के सिरे सफेद होते है।

यदि हिफ़ाजत के साथ रखी जाए तो पिजरे मे यह काफी दिनो तक जिन्दा रह सकती है। खाने के लिए इसे भुने हुए

आटे की गोलियाँ दी जाती है या चूर्ण, पर उसमे प्याज और गोश्त पीस कर मिला देते है । कहते है, इससे इसकी जुबान मे ताकत आती है तथा रोगो से रक्षा होती है । पिजरे मे रहते हुए इसे कई रोग धर पकडते है, जैसे

कि मुह का घाव, जिससे प्राणान्त हो जाता है । पर यदि फौरन इलाज हुआ और खाने-पीने मे गडबडी नही हुई तो ऐसा नही होता ।
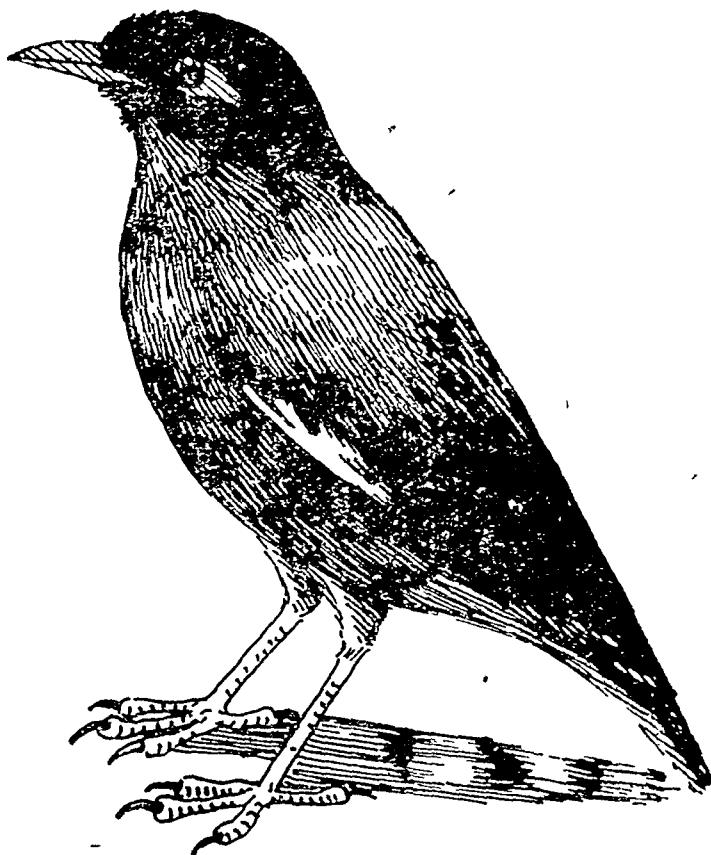
यह पेड के सूराख मे घोसला बनाकर अडे देती है । खूब जमकर गाती है । इसका गला बडा सुरीला होता है इसलिए इसे अक्सर पिजरे मे बन्द होना पडता है । लोग इसे बडे शौक से पाला करते है । सीटी देने मे यह दक्ष होती है । श्यामा पक्षी के पिजरे की तरह इसके पिजरे को भी कपडे से ढँक कर रखने का

रिवाज है। तभी यह ज्यादा गाती है। अन्य पक्षियो के गाने भी बडी खूबी से सीख लिया करती है।

मैना आपस मे खूब लड़ती-झगडती है। पर किसी बाहरी दुश्मन के आने पर ये एक हो जाती है और मिलकर उसका
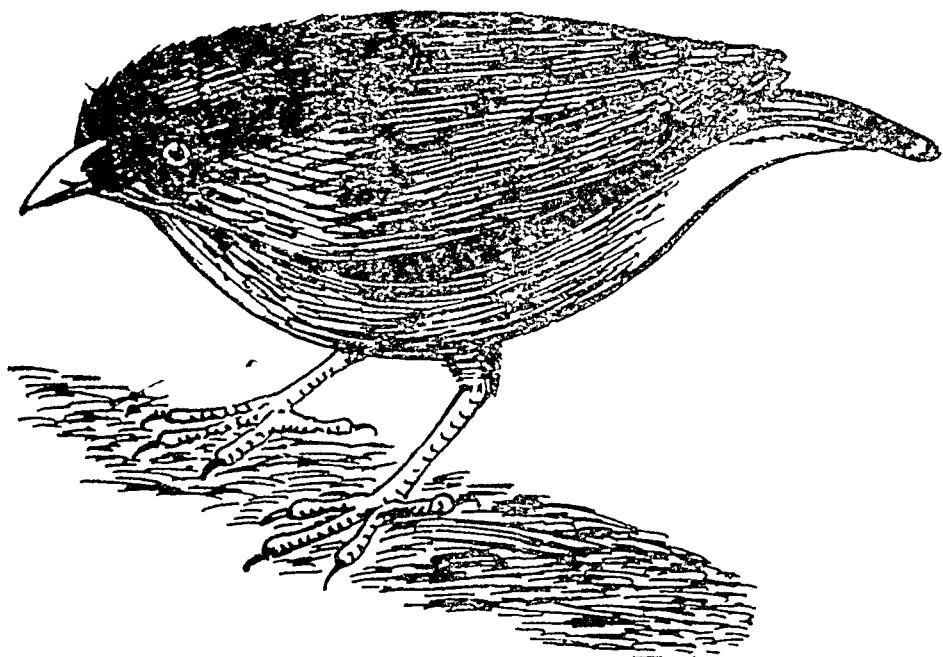
मुकाबला करती है। उसे देखते ही सभी एक जगह इकट्ठी होकर शोर मचाना शरू कर देती है। यों भी शाम के वक्त एक कतार मे बैठ जाती है और तब तक शोर मचाती रहती है जब तक चारो ओर अंधकार न फैल जाए। इसी तरह बैठी हुई रात गुजार देती है। कभी-कभी आधी रात मे सहसा जोरो से शोर कर बैठती है। कहना मुश्किल है कि ये ऐसा क्यों करती है। संभव है किसी खतरे का शक होने के कारण ऐसा करती हो।

गौरैया की तरह देशी मैना भी हमारे घर मे बेखटके आती-जाती रहती है। यह काफी ढीठ होती है। इसकी ढिठाई कभी-कभी हमे बहुत परेशान भी कर डालती है। अभी पिछले दिनो की बात है, मेरे 'लेटर-बाक्स' के भीतर घुस कर इनके एक जोड़े ने घास-फूस रखकर घोसला बना डाला। मैने इन्हे निकलवा फेका, पर ये कब मानने वाली थी। फिर घास-फूस इकट्ठा किया और इस तरह प्राय दस दिनो तक इनके साथ यह झगड़ा चलता रहा। ये घोंसला बनाती और मै उसे बाहर फिकवाता। अत मे हार मान कर मैनाओ ने घोंसला बनाना छोड दिया।

मैना, गौरैया और कबूतर--इन पक्षियो को हमारे घरो से न जाने क्यो इतना प्रेम है। यदि आप दिल्ली मे अपने घर के किसी कमरे की खिडकी चार दिन भी खुली छोड दे तो अवश्य ही इन तीनो मे से कोई एक पक्षी वहाँ आकर डेरा डाल देगा।

खेत की फसल को मैनाओ से काफी नुकसान पहुँचता है। बहुत साल हुए दक्षिण अफ्रीका, मारीशस और न्यूज़ीलैड वालो ने हमारे यहाँ स कुछ मैनाएं मँगवाई ताकि वे फसल को नष्ट करने वाले कीड़ो को खा-खा कर उनकी सख्या बढने से रोके। अब ये स्वय सख्या मे बढ़कर फसलो का सहार करने पर तुली हुई है और वहाँ के लोग इन्हे मँगा कर पछता रहे है। खाने मे इन्हे किसी चीज से परहेज नही है। नाज के दानो के अलावा मरे हुए पक्षियो तक को यह अपना आहार बना डालती है।

मैनाओ की यह एक खास आदत है कि ये दूसरे पक्षियो के खाली घोसलो को देख कर फौरन उनमे जा घुसती है और डेरा
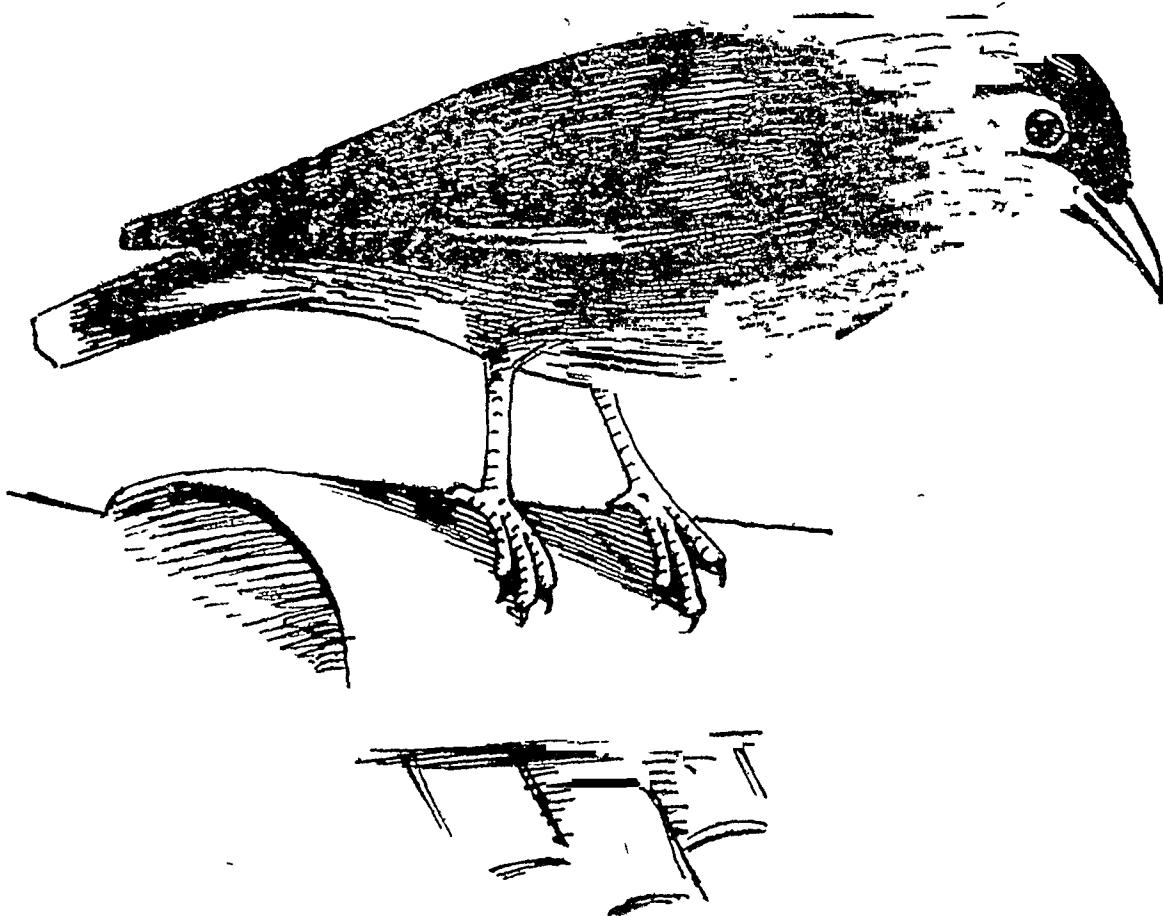
डाल देती है। कभी-कभी इस कारण घोसला बनाने वाले पक्षी के साथ इनका बड़ा झगडा मचा करता है। उसे देखकर ये सीना तान कर खड़ी हो जाती है और जब-तब धक्कम-धक्का भी शुरू हो जाता है, पर अंत में जीतती यही है क्योंकि वह अकेला रहता है और ये संख्या मे कई। धनेश पक्षी के घोंसले से शायद इन्हे बहुत प्यार है। वह खाली हुआ नही कि मैना का जोडा उसके भीतर दाखिल हुआ।

अक्सर आपस मे भी इनके दगल हुआ करते है, खास कर

वैशाख-जेठ में जब अडा देने के दिन आते है । जभी कई एक इकट्ठी हुई, महाभारत शुरू हुआ। चगुल और चोचे चलने लगी, पजे से पजा बधा और लडाई शुरू हो गई। दिन मे कई बार ऐसी झपटे हुआ करती है । कभी-कभी तो ये दगल हमारे घर या बरामदो मे ही हो जाया करते है। उस समय ये लडने मे इतनी व्यस्त रहती है कि यदि आप चाहे तो बडी आसानी से इन्हे पकड सकते है ।

तोता
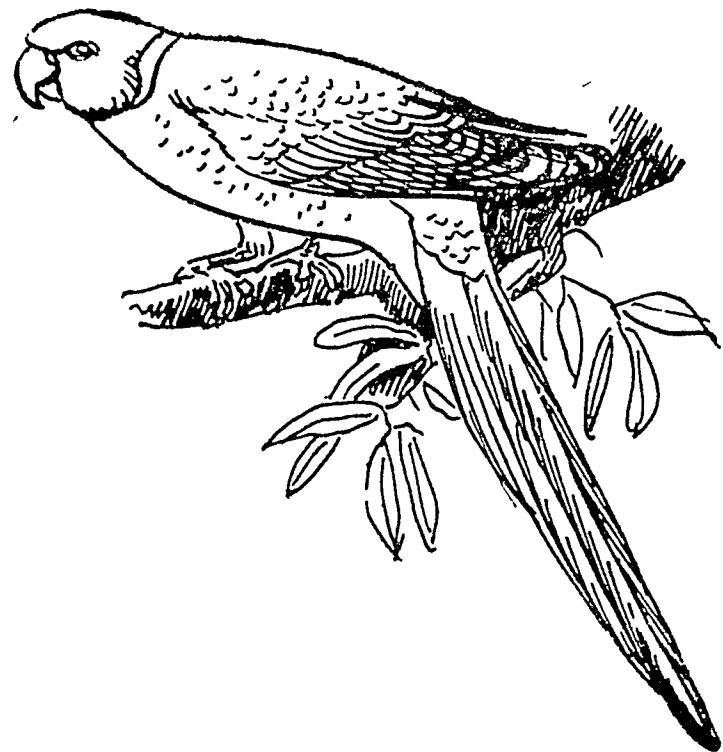
तोता पालने का चलन भारतवर्ष मे सदियों पुराना है। एक समय था जब शहर और गाँव के घर-घर में इनके पिजरे टगे रहते थे और इसका एकमात्र कारण इनकी सीखने की शक्ति थी। यदि तोते को जो पढाया जाय तो वह आसानी से पढ लेता है और फिर दिन रात उसे रटता ही रहता है। एक कहावत बन गयी है—'तोते की तरह रटना' जिसका अर्थ होता है किसी बात को बगैर समझे-बूझे दुहराते रहना। बोली की नकल करने मे भी यह पूरा उस्ताद है। मनुष्य की बोली की यह हू-बहू नकल कर लेता है। अक्सर लोग इसे ईश्वर का कोई नाम सिखा देते है और यह पिजरे मे बैठा हुआ दिन भर उसकी रट लगाता रहता है। इसकी लोकप्रियता का यह एक मुख्य कारण है। कहते है, पुराने समय मे राजाओ के दरबार मे भी तोतो के पिजरे टगे रहते थे। किन्तु पिजरे मे रहकर भी तोता पूरी तरह पालतू नही होता, प्रकृति से जगली ही बना रहता है।

जीवन भर शहरों में रहे,
एक बात जगल की कहे ।

ये पक्तियाँ उसके बारे मे पूरी तरह चरितार्थ होती है । पिजरे मे रहकर न तो उसकी आदते ही बदलती है, न वन का प्रेम ही जाता है । दूसरे पक्षी यदि बहुत समय तक पिजरे मे रहे तो पिंजरे से बाहर निकल कर या निकाल दिए जाने पर काफी समय तक पिजरे के आस-पास या घर के इर्द-गिर्द मडराते रहते है, पर तोता पिजरे से सीधा वन की ओर भागता है। जिसने वर्षो तक उसे पाला-पोसा उसकी ओर मुडकर देखता भी नही । इसलिए, जो लोग कृतज्ञ नही होते उन्हे 'तोताचश्म' या तोते की आँखवाला कहते है क्योकि तोते की तरह वह भी आँख बदल लेने वाले होते है । तोते हद दरजे के क्रोधी भी होते है । पिजरे के तोते को यदि आप चिढा दे तो वह फौरन काटने के लिए तैयार हो जाएगा और यदि आपकी उगली पा जाए तो उसे काटे बिना न छोडेगा ।

तोतो की बहुत सी किस्मे है । कहते है, ससार मे प्राय १६० किस्म के तोते पाये जाते है । हमारे देश मे मुख्यत चार किस्म के तोते मिलते है । ये सभी हरे रग के होते है पर इनकी रूप-रेखा मे थोडा फर्क रहता है--

१ पहली किस्म का तोता वह है जिसके शरीर का रग हरा, चोच लाल, ठोडी पर एक काला धब्बा होता है । नर के गले मे एक कठी होती है जिसका रग ऊपर गुलाबी, नीचे लाल होता है, और गले के नीचे कालापन होता है। आँख से लेकर नाक तक एक काली धारी भी होती है । मादा की कठी का रग हल्का

हरा होता है। आँखें सफेद होती है। लम्बाई १६ इच होती है १० इच की पूँछ, ६ इंच का बदन। यह इस देश का सामान्य तोता है जो अधिक संख्या मे बाजारों मे बिकता पाया जाता है। पढने मे यह सबसे तेज होता है, इसकी उडान भी तीर की तरह सीधी होती है।

२ दूसरी किस्म के तोते को लालटुइया या लालसिरा कहते है। इसकी चोच लाल न होकर नारंगी रग की होती है और गरदन बैंगनी रंग की। आँखे सफेद भी होती है, गुलाबी भी। पंखो का रंग बिलकुल हरा न होकर गुलाबी लिए हुए हरा होता है।

३ तीसरी जाति का तोता वह है जिसे बगाल मे 'चन्दना' कहते है। यह देखने मे नम्बर १ से मिलता-जुलता है पर कद में औरो से बडा होता है तथा इसके पंखो पर गहरे लाल रग का एक धब्बा होता है। नर के गले के चारो ओर एक माला होती है जिसका रंग ऊपर गुलाबी, नीचे कठ के पास काला होता है। मादा के यह माला नही होती। चोच छोटी पर मजबूत, मोटी, काफी मुडी हुई लाल रग की होती है। इसे हीरामन तोता भी कहते है। यह हिन्दुस्तान के सभी भागो मे पाया जाता है तथा पिजरे मे अच्छी तरह पलता है। लम्बाई प्राय १९ इच होती है।

४ चौथे प्रकार का वह तोता होता है जिसका शरीर छोटा, मैना के कद का, पर पूँछ काफी लम्बी होती है। बदन हरा, सिर का रग नीलापन लिए हुए लाल होता है। पूँछ के बीच के पर नीले होते है जिनके आगे के हिस्से पर सफेदी होती है। डैनो पर लाल धब्बे होते है तथा चोच नारगी रग की होती है। इसकी विशेषता

यह है कि जहाँ और तोतों की आवाज मे टर्रापन है, इसकी कूजन मे एक प्रकार की मिठास है जो कानो को बडी प्यारी लगती है। यह लालसिरा से बहुत बातो मे मिलता-जुलता होता है। मार्च से लेकर मई तक इसके अडे देने का समय है। बाकी तोते उत्तर भारत मे मार्च-अप्रैल मे, दक्षिण- मे जनवरी-फरवरी मे अडे देते है। अडो का रंग बिलकुल सफेद होता है।

तोते घास-फूस के घोसले नही बनाते, दीवार अथवा वृक्ष के सूराखो मे अडे पारते है। कहते है, सेमल वृक्ष के कोटर मे पले हुए तोते औरो से अधिक वाचाल होते है। सेमल की आयु बडी लम्बी होती है, अतएव इसमे सूराख भी ज्यादा और गहरे होते है, शायद इसीलिए सेमल के वृक्ष इन्हे अधिक पसन्द भी है।

कलकत्ता के बाजार मे एक छोटी जाति के तोते बिकते है जो बाहर से आते है तथा इस देश के भी कई हिस्सो मे मिलते है। ये सबसे छोटी जाति के सुग्गे है जो फल के साथ-साथ फूलो के पराग और मधु का भी पान करते है। ताड और खजूर के वृक्षो पर जाकर ये चुपके से घडो से ताडी चुरा-चुरा कर पी जाते है। तब देर तक नशे मे बेहोश, वृक्ष की डालियो पर लटके रहते है अथवा जमीन पर पडे रहते है। रग मे ये घास जैसे हरे होते है तथा इनकी पुछ चौकोर छोटी होती है।

भारत का कोई हिस्सा ऐसा नही है जहॉ तोते न मिलते हो। हिमालय की ४-५ हजार फुट की ऊँचाई तक ये पाए जाते है। ये झुड मे रहने वाले पक्षी है।

ससार के सभी गर्म देशो मे तोते पाये जाते है। सर्द देशो मे

ये नहीं मिलते । यूरोप में तोतों का प्रवेश सिकन्दर बादशाह के समय में हुआ जबकि हिन्दुस्तान से लौटते हुए वे कुछ तोते स्वदेश लेते गए और फिर उसके बाद तो यूनान और रोम मे इनकी लोकप्रियता इतनी बढ़ी कि जहाज मे भर-भर कर ये पूरब के देशो से यूरोप जाने लगे । तोता पालना वहाँ एक फैशन-सा हो गया ।

तोते फल और अन्न खाते है । खेत मे खड़ी फसल पर झुड-के-झुड ऐसे टूटते है कि खेत-का-खेत चट कर जाते है ।

तोते की चोच छोटी, मोटी तथा मुडी हुई होती है । इसके पैर मे चार अगुलियाँ होती है—दो आगे, दो पीछे । पाँव से यह हाथ की तरह काम लेता है । उससे खाने की वस्तु पकड कर खाता है । ऊपर चढते वक्त तीसरे पैर के रूप में चोच का इस्तेमाल करता है । अक्सर पेड़ की डाल मे सिर नीचा कर के लटका हुआ यह झूल-झूल कर मजा लेता है । सिखाए जाने पर तरह-तरह के खेल दिखाता है, जैसे टार्च जलाना, बन्दूक चलाना इत्यादि । कलकत्ता के मेरे एक मित्र है । उनके पास एक तोता है जो हमेशा खुला हुआ ही रहता है । उसका व्यवहार बिलकुल पालतू कुत्ते-जैसा होता है । सुबह होते ही उनके पाँव पर धीरे-धीरे चोच मारकर, बोल-बोल कर उन्हे जगाता है । बैठकखाने मे उनके पाँव के पास बैठा रहता है । किसी बाहरी आदमी के आने पर जोरो से बोलने लगता है, उड़कर उनके पास जाता है और उसकी खबर देता है । चाय से इसे खास शौक है, पर गर्म चाय ही पसंद करता है । पीता भी अपने ही प्याले मे है । किसी और प्याले मे देने पर रूठ कर बैठ जाता है । लोग इसके मनुष्य-जैसे व्यवहार से बडे चकित होते है ।

तोते की उमर बड़ी लम्बी होती है। कहते है, यह ६०-७० साल तक जिन्दा रह सकता है।

तोते और मनुष्य का इस देश मे बड़ा गहरा सम्बन्ध रहा है तथा यहाँ की लोक-कथाओ मे इसने प्रमुख स्थान पाया है। हीरामन तोता की कहानी इस देश के बच्चे-बच्चे तक जानते है।

अमीर खुसरो के बुझौवल मशहूर है। तोता सम्बन्धी उनका अब एक बुझौवल देखिए—

सबज रग औ मुख पर लाली,
उस पीतम गल-कठी काली,
भाव-कुभाव जगल मे होता,
ऐ सखि, साजन ? ना सखि, तोता।

क्या तुम बताओगे कि यहाँ अमीर खुसरो ने किस जाति के तोते की चर्चा की है ?
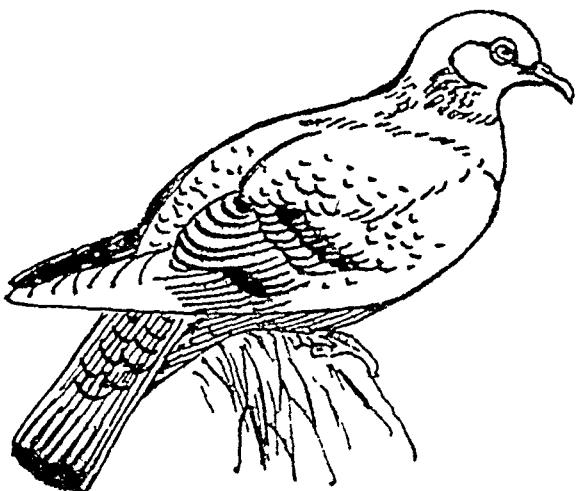
कबूतर

कबूतर एक ऐसा पक्षी है जो पेडो पर नही बल्कि हमारे घरो मे रहता है। देश के सभी हिस्सो मे यह पाया जाता है। बर्फ से ढकी कश्मीर की अमरनाथ गुफा तक मे सैकडो वर्षो से कबूतर का एक जोड़ा तीर्थयात्रियो को नजर आता रहा है। सामान्य कबूतर को उत्तर भारत में 'खौदा कबूतर' कहते है। उसके नर मादा का रग-रूप एक-सा होता है—बदन का रग सलेटी, गर्दन पर चमकीले हरे पखों का एक कठा, इसके नीचे चारो ओर एक बैगनी रंग की पट्टी, पीठ और डैनों का रंग गहरा तथा उन पर दो-तीन आडी पट्टियाँ, दुम का छोर काला और उसके दोनो ओर सफेद धारी होती है। इसकी आँखो की पुतली नारगी, चोच के सिर पर कालापन, जड पर सफेदी तथा पैर गहरे गुलाबी रग के होते है।

इसके सिवाय भी कबूतर की कई किस्मे है जो आम तौर पर सब जगह नही पाई जाती। इन्हे कबूतर के शौकीन लोग ही पालते है। मुसलमान बादशाहो के समय मे कबूतर पालने का रिवाज इस देश मे बढा और शायद उन्ही दिनों कई पालतू कबूतर बाहर से लाए गए। इनके रंग तरह-तरह के होते है—काला हरा, गुलाबी, सफेद, चितकबरा इत्यादि। इसमे मुख्य पाँच है—

‘गिरहबाज’ जो गिरह मारते हुए सुदूर आकाश मे उड जाते है तथा सुबह के गए शाम को लौटते है । ‘लोटन’ जो ज़मीन पर लोटते है, ‘शीराजी’ ‘तथा बगदादी’ जो शिराज और बगदाद के शहरो से किसी जमाने मे आए थे और देखने मे बडे सुन्दर होते है । ‘मुक्खी’ जिसका सिर काला,बदन सफेद होता है तथा ‘लक्का’ जिसकी पूँछ खडी, हाथ के जापानी पखे जैसी होती है । एक और प्रकार का कबूतर होता है जिसका गला मुँह मे हवा देने से बैलून-जैसा फूल जाता है ।

ये सभी पालतू कबूतर है । आजादी से रहने वाला कबूतर वह है जो सलेटी रग का होता है तथा मकान की कार्निसो, छज्जो आदि पर घास-फूस रख कर अडे देता है । बडी-बड़ी इमारतो मे ये सैकडो की सख्या मे एक साथ रहते है । बम्बई मे जैन मत के सेठ-साहूकारो की ओर से प्रति दिन कबूतरो को दाना चुगाया जाता है और ये हजारो की सख्या मे आ-आ कर दाना चुगते है ।

कबूतर साल भर अडे देते रहते है । इनके अडे रग मे सफेद होते है । पेट से एक प्रकार का दूध जैसा तरल पदार्थ निकाल कर ये चोच से बच्चो को पिलाया करते है । अन्य कोई पक्षी ऐसा नही करता, यह कबूतर की ही विशेषता है ।

कबूतर चिट्ठी ले जाने का काम सदियो से करते आए है । जहॉ ये पलते है वहाँ से सैकडो मील पर भी ले जाकर छोड देने से ये अपने रहने की जगह पर लौट आते है । लडाई के मैदान से ये लडाई की खबरे पहले भी ले आया करते थे, आज भी ले आते है । कहते है, बादशाह अकबर ने ऐसे बीस हजार कबूतर
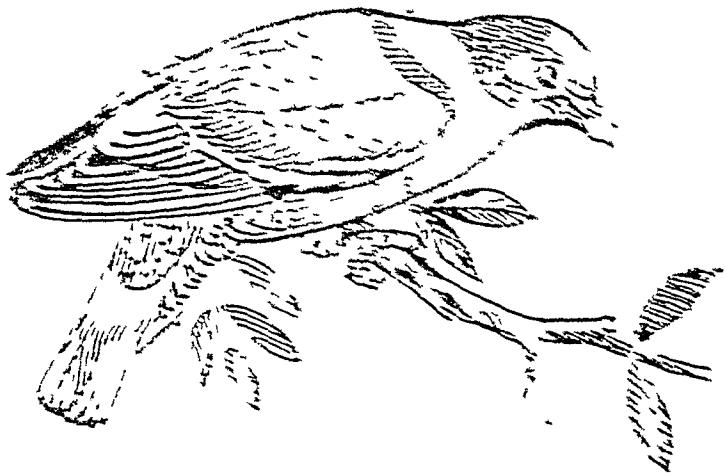
पाल रखे थे जो डाक लाने का काम किया करते थे।

कबूतर के पाँव की तीन उँगलियाँ आगे की ओर और एक पीछे की ओर होती है। सिर छोटा होता है। कहा जाता है कि इसके पंख की हवा, हृदय रोग के रोगियों के लिए बड़ी फायदे की होती है तथा लक्का कबूतर का माँस खाने से लक्वा की बीमारी में लाभ पहुँचता है।

कबूतर के नर-मादा का सम्बन्ध जीवन-भर का होता है। दोनों दिन रात साथ रहते हैं। इनमें गहरा प्रेम होता है।

कबूतर आदमी से घबराते नहीं, दाना चुगते हुए निर्भय होकर हमारे पास तक चले आते हैं। बच्चे इन्हें पकड़ लेते हैं, फिर भी ये भागते नहीं, फिर उनके पास चले जाते हैं। पालतू कबूतर बहुधा हमारी मेज पर आकर बैठे रहते हैं। हम इन्हें पकड़ कर इनके सिर पर हाथ फेरते हैं तो ये पालतू कुत्तों की तरह सिर झुका लेते है, खुश होते हैं, उड़ते नहीं।

★

पंडुक

पडुक की शक्ल-सूरत और आदते कबूतर से बहुत मिलती है । यह देखने से ही भोला-भाला मालूम पडता है । नर-मादा हमेशा साथ-साथ रहते है । सामान्यत यह वृक्ष पर रहता है, पर दिन भर हमारे घर के आस-पास दाना चुगा करता है । कभी-कभी हमारे घर के किसी हिस्से में घोसला तक बना डालता है ।

इसकी भी कई उप-जातियाँ है जिनमे मुख्य ये है—

१. **काल्हक**—यह कद मे सबसे बड़ा होता है, कबूतर-जैसा । इसका सिर, गर्दन, शरीर का ऊपरी हिस्सा ललछौह भूरा, नीचे का हल्का कत्थई होता है । गर्दन के दोनो तरफ काली चित्तियाँ और डैनों पर निशान बने होते है। दुम भूरी होती है जिसके सिरे पर गाढ़ा कत्थई रंग होता है । पंडुको मे यह सबसे अधिक शर्मीला होता है ।

आँख की पुतलियाँ नारगी, चोंच भूरी, पाँव और पंजे लाल रग के होते है । इसके अडो का रंग सफेद होता है ।
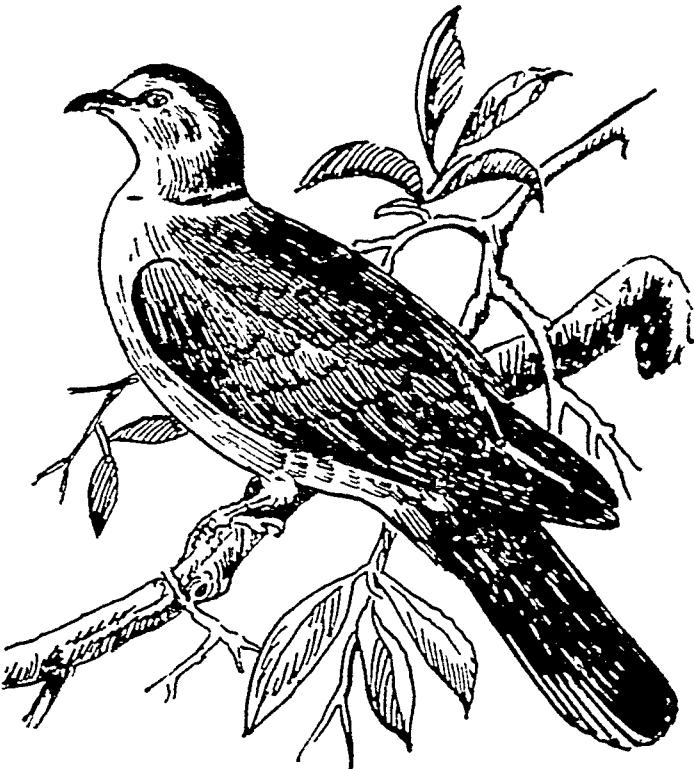
२. **चितरोखा**—यह काल्हक से ज़्यादा खबसूरत होता है। सिर का रंग ललछौह सलेटी, गर्दन के ऊपर से पीठ तक सफेद बिन्दियों से भरा हुआ काला रग, बाद का हिस्सा भूरा जिस पर हल्की कत्थई चित्तियाँ और लकीरे शोभा पाती रहती है। डैने और दुम का बिचला हिस्सा भूरा होता है। दुम के दोनों किनारे काले और सफेद होते है। गला और दुम का निचला हिस्सा सफेद, बीच का हिस्सा ललछौह कत्थई होता है। आँख की पुतली हल्की भूरी होती है। पैर बैंगनी रग लिए हुए लाल, चोच काली होती है।

३. **धवर**—इसका रग राख के रग का होता है। सिर पर फालसई रग की झलक तथा गले पर सफेद और काले रंग की एक कठी होती है। कद मे चितरोखा के बराबर होता है। इस देश में यह सबसे अधिक सख्या मे मिलता है।

४. **टुटरूँ**—यह ऊपर के तीनो किस्म के पडुको से कद मे छोटा होता है। इस मे हल्के फालसई और ललछौह रंग की प्रधानता है। गर्दन के दोनों ओर सफेद विन्दियो से भरी हुई काली पट्टियाँ होती है। शरीर के नीचे का हिस्सा सफेद होता है। ढिठाई मे यह सबसे वढा-चढा है तथा दाना चुगते हुए हमारे बरामदे तक मे घुस आता है। यही नही, हमारे घरो मे घोसले तक बना डालता है।

५ **ईटकोहरी**—यह कद में सबसे छोटा है। पर इसकी वोली सब से अधिक सुहावनी होती है। रग ईंट जैसा होता है। नर और मादा में फर्क रहता है। नर का सिर सलेटी, गर्दन पर काली कंठी, ऊपर का हिस्सा ईंट के रंग का, डैनों के सिरे कत्थई रग के होते

है। दुम की जड सलेटी, बीच का हिस्सा भूरा होता है जिसके किनारे काले और सफेद होते है। अन्य पडुको के नर-मादा मे कोई फर्क नही होता पर इसकी मादा नर से भिन्न होती है।

मादा राख के रंग की होती है। सिर, डैनो और दुम के निचले हिस्से मे नर की तरह का भूरापन रहता है।

पडुक आमतौर पर टुँटरू-टूँ बोला करते है। दाना चुग कर जीवन बसर करते है। साल मे छ-छ बार तक अडे देते है जो रग मे सफेद होते है। इनके घोसले मचान-जैसे बेढगे बने हुए होते है जिसके नीचे से अडे-बच्चे साफ नजर आते रहते है। अग्रेजी की एक कविता है जिसमे पडुक को सबोधन कर के कवि ने कहा है—"कौए अपने निश्चित समय पर घोसले बनाते है, चडूल समय आने पर ही जोडा बाँधते और अडे पारते है, सभी पक्षियो का यही हाल है। पडुक! तू ही एक ऐसा पक्षी है जो हर मौसम मे अडे दिया करता है।" बात बिलकुल सही है। ईसाइयो के धर्मग्रन्थ बाइबिल मे इनकी जगह-जगह चर्चा है, अतएव ईसाई इन्हे पवित्र पक्षी मानते है, शान्ति का दूत समझते है और भूलकर भी इनका शिकार नही करते। बाइबिल मे लिखा है कि जब प्रलय के जल मे
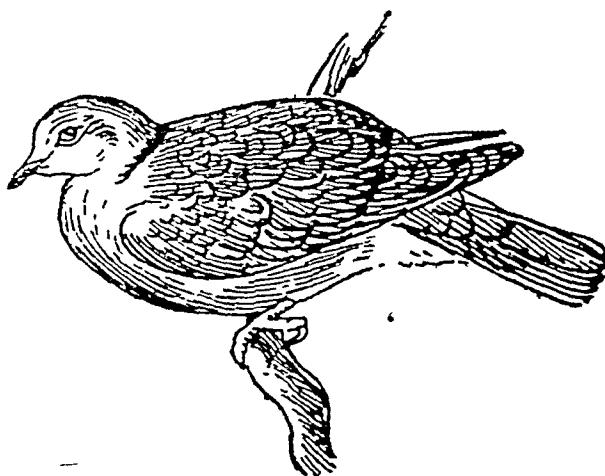
सारी पृथ्वी डूब गई. केवल भगवान की इच्छा से नोह नामक एक व्यक्ति, जो बड़ा धर्मात्मा था, एक नाव में बच रहा. तब कुछ दिनों के बाद नोह ने पंडुक ही को यह देखने को नाव के बाहर भेजा था कि पृथ्वी के किसी हिस्से से जल

हटा है या नही । पड़ुक ने तीसरी बार लौट कर बताया कि हाँ, कई जगहों से जल हट गया है, तभी नोह ने नाव से निकल कर पृथ्वी पर पाँव रखा, घर बसाया और फिर पृथ्वी पर मनुष्य का वंश नोह के द्वारा बढा ।

इस देश मे पड़ुक के अनेक नाम है जैसे फाख्ता, पेडकी, घुग्घी, बिनता आदि। स्वभाव सब का एक-सा है। कबूतर की ी तरह नर जब आनन्दित होता है तो नाचने लगता है, नाच-नाच कर मादा को खुश कर लेता है। कहा भी है--

नाचहि पड़ुक, मोर, परेवा,
विफल न जाय काहु कै सेवा।

पड़ुक के नर-मादा जीवन भर साथ-साथ रहते है। इनके जैसा नर-मादा का प्रेम शायद ही किसी और पक्षी मे होता हो। एक बार का किस्सा है कि मेरे एक मित्र ने दाना चुगते हुए पड़ुको मे से एक को बन्दूक से मार दिया। वह नर था। मादा बजाय इसके कि वहाँ से उड भागे, नर के पास ही बैठी रही और बड़े करुण स्वर मे बोलती रही। उडा देने पर भी फिर तुरन्त वही आ कर बैठ गई। इस करुण दृश्य को देख कर मुझे बडा दुख हुआ और मैंने सकल्प किया कि फिर कभी पड़ुक के शिकार मे शामिल न हूँगा।
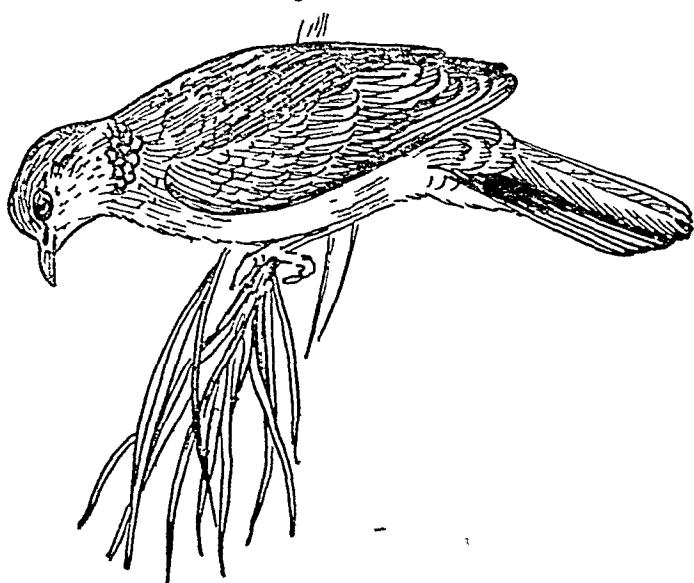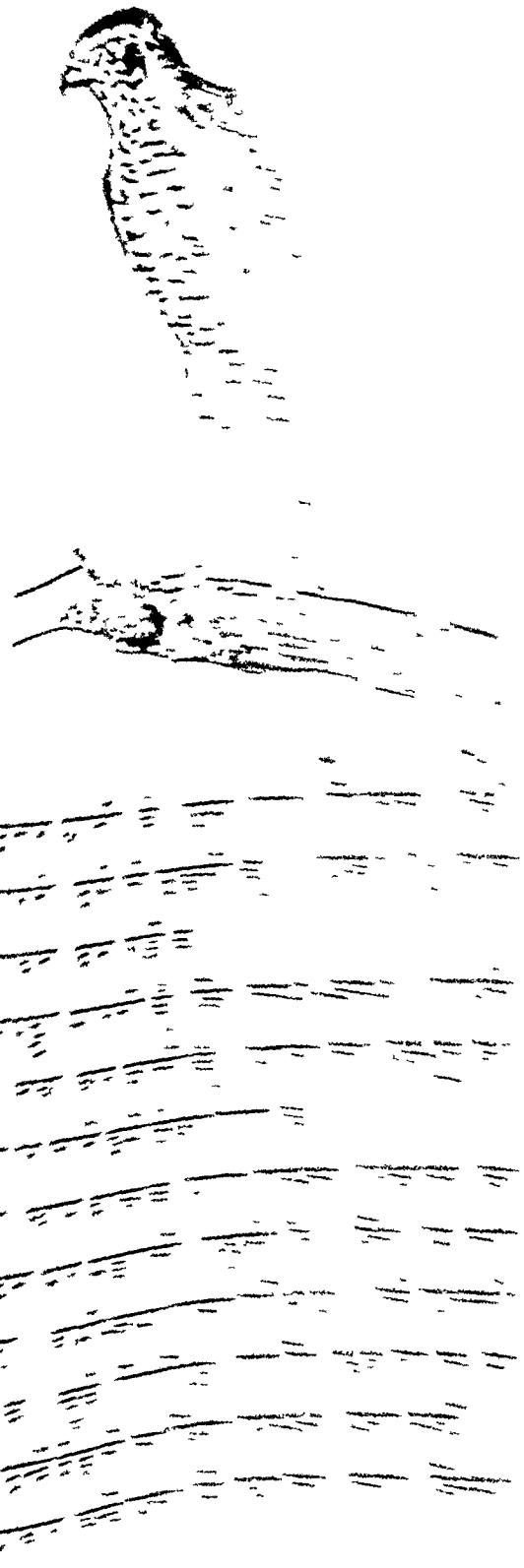
वृक्ष पर जा बैठती है और चट कर जाती है। चील अपना शिकार चोच से पकडने की बजाय अपने फौलादी पजो से पकडती है, और जब यह शिकार लेकर चलती है, कौए रास्ते मे उसे छीनने की कोशिश करते है। कौए इससे डाह करते है जैसा कि एक ही पेशे वालो के बीच आपस मे अक्सर हुआ करता है। दोनो की एक-सी करतूते है, खासकर डाका डालने मे दोनो ही सिद्धहस्त है।

चील की भी कई उपजातियाँ है जिनमे दो मुख्य है—भूरी या काली और खेमकरी। खेमकरी के और भी कई नाम है जैसे खैरी, शकर, धोबिया, शाह-मुबारक, ब्राह्मणी चील आदि। चील को चिल्होर भी कहते है।

काली चील खैरी से कुछ बडी होती है, करीब
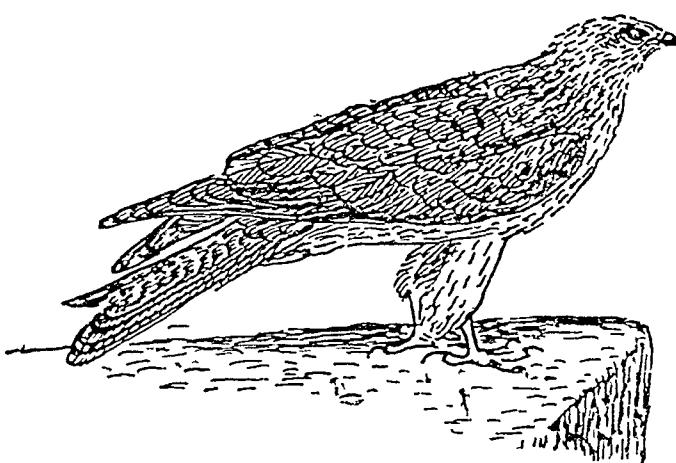
दो फुट की और इसके नर-मादा में कोई फ़र्क नहीं होता। इनका ऊपर का सारा हिस्सा भूरा रहता है, डैनों का भूरा रंग ज़्यादा गहरा होता है, सिर के ऊपरी हिस्से से गर्दन तक पीलापन लिए भूरा रंग होता है.
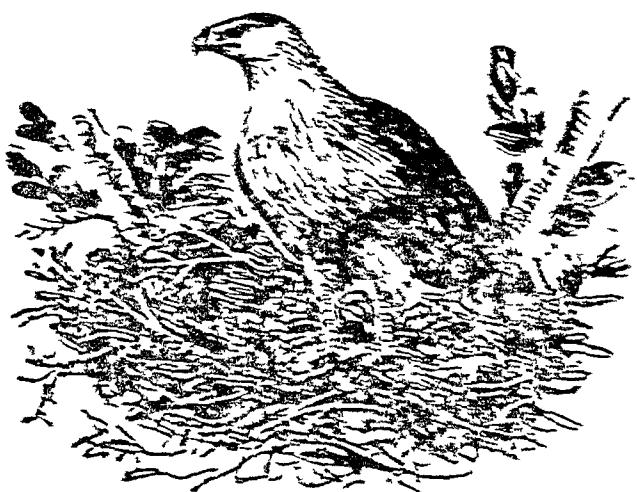
एक-से होते है । दक्षिण मे एक तीर्थस्थान है जिसे 'पक्षीतीर्थम' कहते है । यहाँ हर रोज ठीक दोपहर के समय सुदूर आकाश से खैरी चील का एक जोडा उतर कर आता है और पुजारी के हाथो से प्रसाद ग्रहण करता है, फिर उडकर जिस दिशा से आया था उसी दिशा को चला जाता है। बहुत से यात्री इसके दर्शन के लिए वहाँ पहले से उपस्थित रहते है । कहते है, भगवान का प्रिय वाहन गरुड यही है जिसका हिन्दू शास्त्रो मे उल्लेख है । अतएव इनके दर्शन से पुण्य मिलता है । पता नही इसमे कितनी सच्चाई है पर इतना जरूर है कि हजारो वर्षो से यहाँ यह क्रम चल रहा है । यह उसी प्रकार की आश्चर्यजनक घटना है जैसी कि अमरनाथ की बर्फीली गुफा मे, जहाँ मीलो तक कोई आबादी नही है, सैकडो साल से कबूतर के एक जोडे का देखा जाना ।
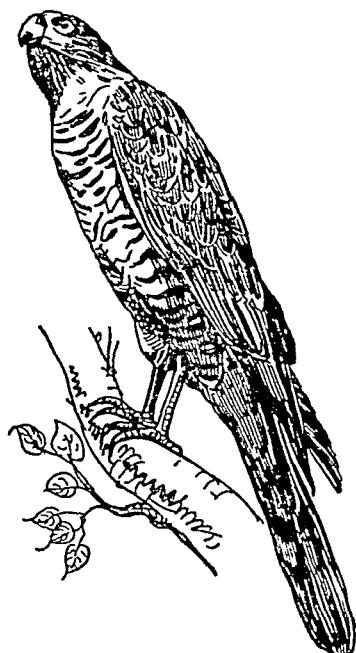
बाज़, बहरी, शिकरा

ये वे पक्षी है जो पक्षियो ही का शिकार करते है तथा शिकार की खोज में हमारे घर के आसपास के वृक्षो पर चक्कर लगाया करते है । इन सब की मादा शिकार करने मे नर से ज्यादा तेज होती है और कद मे बडी भी । बाज सबसे बडा है जिसके शरीर का रग ऊपर भूरा, नीचे काली और भूरी लकीरो के साथ सफेद होता है । इसकी मादा 'जुर्रा' कहलाती है । पुराने जमाने मे देश-देश के राजे-महाराजे बाज़ पालते थे और उसे दस्ताना पहने हुए हाथ पर लिए फिरते थे । इससे वे चिड़ियो का शिकार करते थे । इगलैड की रानी एलिज़ाबेथ प्रथम को बाज़ की सहायता से पक्षियो का शिकार करने का बडा शौक था, हमारे यहाँ अकबर और जहाँगीर बादशाहो को भी इस प्रकार शिकार करना बहुत प्रिय था ।

बाज के बाद बहरी का दर्जा है जो शिकार करने मे सब से आगे रहती है । यह आसमान में उड़ते हुए बतख़ो तक को पकड लाती है । इसकी भी कई उप-जातियाँ है, जैसे कि तुरमुति, लगर,

खेरमुतिया आदि। तुरमुति मादा को कहते है। इसका नर 'चेटवा' कहलाता है। देखने मे दोनो एक-से होते है। इनके सिर का ऊपरी हिस्सा तथा गर्दन के आस-पास का रग धूमिल लाल होता है। बदन का ऊपरी हिस्सा भूरी धारियो के साथ सलेटी होता है। पेट सफेद होता है। भूरी दुम पर काली आडी लकीरे होती है। इसके अडे गुलाबी झलक लिए हुए सफेद होते है। लगर का ऊपरी हिस्सा भूरा, नीचे का सफेद होता है। सीने से लेकर पेट तक छोटी-छोटी कत्थई खडी लकीरे होती है। आँख के ऊपर से गर्दन तक एक भौह जैसी सफेद रेखा होती है। इसके अंडे कई रंग के होते है। खेरमुतिया लगर से छोटी होती है। इसके नर का ऊपरी हिस्सा ईट जैसा लाल होता है। सिर और गर्दन का बगली हिस्सा सलेटी। पीठ पर काली चित्तियाँ होती है। नीचे का हिस्सा बादामी होता है। मादा का ऊपरी हिस्सा ललछौह भूरा होता है, नीचे का नर जैसा।

बहरी मे केवल एक ही दोष है कि वह कभी-कभी शिकार न मिलने पर पालने वाले के पास न लौट कर इधर-उधर चल देती है जैसा न तो बाज करते है और न शिकरे। ये सदा अपने मालिक के पास लौट आते है, उसे छोड कर दूसरी जगह का रास्ता नहीं पकड लेते। शायद इसीलिए बहरी के सम्बन्ध मे यह कहा गया है कि यदि वह भटके नही तो अपने शिकार-गुण के कारण सोने के भाव बिके—

'जो बहरी बहरे नही, सोने तोल बिकाय।'

शिकरा सबसे छोटा होता है, पर हमारे यहाँ सब से अधिक प्रसिद्ध है। इसका रग-रूप पपीहे से मिलता है। नर और मादा मे फर्क है। नर का ऊपरी हिस्सा गहरे राख के रग का होता है, नीचे

का बादामीपन लिए हुए सफेद । इसके सीने से पेट तक का रग ललछौह होता है तथा उस पर आडी सलेटी लकीरे पड़ी होती है । मादा के ऊपरी हिस्से मे भूरापन है । इसके अण्डो का रंग नीलापन लिए हुए सफेद होता है। हमारे बाग-बगीचो मे शिकरे ज्यादा सख्या मे पाए जाते है । अक्सर यह और कभी-कभी बाज भी, हमारे घरों के सामने के पेडो पर शिकार की टोह मे बैठे रहते है । इनके आते ही पक्षियो मे खलबली मच जाती है और वे जहाँ-तहाँ भागना शुरू कर देते है । एक बार मेरे पिजरे मे पालित कनेरी पक्षी पर एक बाज ने हमला किया । पिजरे के भीतर तक तो वह नही पहुँच सका पर उसके दर्शन मात्र से ही कनेरी का हार्ट फेल हो गया । ऐसा डर है इसका दूसरे—खासकर छोटे पक्षियो पर ।

पुराने दिनो मे जैसा कि ऊपर कहा गया है, राजा से लेकर साधारण लोगों तक मे बाज पालने का बड़ा शौक था । कभी-कभी इसे लेकर बड़े झगडे भी हो जाया करते थे । कहते है, एक बार बादशाह अकबर के दरबार मे कॉगडा के राजा आए हुए थे । उनके साथ उनका राजकुमार भी था । उसके हाथ मे एक बाज़ था । शाहजादे (अकबर का पुत्र जहॉगीर) को यह पसन्द आ गया और राजकुमार से उसने इसे मॉगा । राजकुमार ने बहाना करके कहा कि मै घर जाकर इसकी मादा 'जुर्रा' भेजूँगा जो शिकार पकडने में ज्यादा तेज होती है । जहॉगीर को इससे बडा रज हुआ और पिता के मरने पर गद्दी पर बैठते ही उसने इसका बदला लिया । कॉगडा के राजा तब तक मर चुके थे और वह राजकुमार राजा बन चुका था । जहॉगीर ने उसके खिलाफ फौज भेज कर उसका सिर उतरवा लिया । उन दिनो यह नियम था कि हिन्दुस्तान के

राजा-महाराजा दिल्ली के बादशाह के पास हर साल बाज, बहरी और शिकरे पकडवा कर भेजा करे। जो इस आज्ञा का पालन नही करता था उसे दण्ड दिया जाता था। इतना शौक था बादशाहो को इन शिकारी पक्षियो का।

ये पालतू होकर हाथ पर बैठे रहते है और इशारा पाते ही दूसरे पक्षियो पर हमला कर देते है और उन्हे पकड लाते है। इन सब की मादा कद मे बडी और शिकार मे तेज होती है। सब की चोच नुकीली और आगे की ओर मुडी हुई होती है, सब के पजे मजबूत होते है।

इन सभी शिकारी पक्षियो के अडा देने का समय फरवरी-मार्च से जून तक है। ये सभी पेडो पर घोसले बनाते है।

हुदहुद

अक्सर एक कलगीदार पक्षी हमारे घर के सामने अपनी चोंच से, जिसका आकार नहरनी से मिलता-जुलता होता है, ज़मीन खोदता रहता है। यही है वह हुदहुद जिसे इस देश के कई भागों मे 'हजामिन चिड़िया' के नाम से भी पुकारते है। दूब के भीतर से कीड़े ढूँढ-ढूँढ कर निकालते रहने के कारण इसे 'दुबैया' भी कहते है।

अपनी कलगी की वजह से यह देखने मे अत्यन्त सुन्दर

लगता है। इसकी कलगी के सम्बन्ध मे एक बड़ा रोचक किस्सा कहा जाता है।

कहते है, एक बार बादशाह सुलेमान अपने उडनखटोले पर बैठे हुए आकाशमार्ग से कही जा रहे थे। सूर्य की तेज धूप से बेचेन होकर उन्होने उडते हुए गीधो से कहा कि वे उनके ऊपर छाया करते हुए उडे। गीध राज़ी नही हुए। इस पर शाह सुलेमान ने शाप दिया कि उनकी गर्दन परो से खाली रहा करे ताकि वे सूर्य की गर्मी से स्वय जला करे।

शाह सुलेमान और आगे बढे। इस बार हुदहुदो का सरदार मिला। उससे भी उन्होने यही बात कही। वह राजी हो गया और शाह सुलेमान की बाकी यात्रा आराम से कटी। खुश होकर सुलेमान ने उससे वर मॉगने को कहा। उसने अपनी पत्नी से सलाह करके सारी जाति के लिए सिर पर एक सोने की कलगी चाही। बादशाह ने हँस कर वर दे दिया। तब से हुदहुदो के सिर पर सोने का मुकुट निकल आया। पर इसका परिणाम बुरा हुआ। लोग सोने के लोभ मे हुदहुदो को मारने लगे। वंश-सहार की नौबत आ गई। सरदार दौडा हुआ शाह सुलेमान के पास आया। शाह सुलेमान ने तरस खा कर उसकी कलगी परो की कर दी। तभी से हुदहुद के सिर पर सोने की जगह परो की कलगी शोभा पा रही है। मुसलमान शायद इसी कलगी के कारण इसे 'शाह सुलेमान' नाम से पुकारते है।

हुदहुद के सम्बन्ध मे इस प्रकार के बहुत से किस्से प्राचीन यूनान, मिस्र, क्रीट आदि देशो मे भी प्रचलित थे। बाइबिल तक मे इसकी चर्चा है तथा इन देशो के साहित्य मे इसने स्थान पाया है।

कहते है, क्रीट के राजा जेरियस को अपने पाप-कर्मो के लिए हुदहुद का रूप धारण करना पड़ा था।

इसकी कई उप-जातियाँ है। इस देश के हुदहुद का रग चोटी से लेकर गले तक बादामी होता है, कलगी के सिरे काले और सफ़ेद होते है, आधी पीठ तथा कन्धे से सीने तक का हिस्सा हल्का बादामी होता है। पीठ पर चौडी सफेद और काली धारियाँ होती है। दुम का बाहरी हिस्सा काला, भीतरी सफेद होता है। चोंच काली सीग के रंग की और पाँव गहरे सलेटी रग के होते है।

यह कीड़े-मकोडे खाता है और उन्ही की खोज मे ज़मीन खोदता रहता है। और पक्षियो की तरह इसे पेड़ अथवा फूल-पत्तों पर के कीड़ो से शौक नही है। यह उन कीड़ो की खोज मे रहता है जो जमीन के भीतर छिपे रहते है। नाज और फल भी इसे पसंद नही। यह गन्दा पक्षी है तथा इसके घोसले से तेज बदबू आती रहती है। कभी इसकी सफाई नही करता। इसीलिए फ़्रेंच भाषा मे एक कहावत है—हुदहुद जैसा गन्दा।

फरवरी से जुलाई तक इसके अडे देने का समय है। अंडो की संख्या तीन से दस तक होती है, रंग बादामी और हरेपन के साथ हल्का नीला होता है।

इसकी बोली कुछ अजीब-सी है—उक्-उक्-उक्। अपनी बोली से यह दूर ही से पहचाना जा सकता है। इस देश के सभी हिस्सों मे यह पाया जाता है। यह फसल को नुकसान पहुँचाने वाले कीड़ों को खा जाता है। इसी कारण इस देश मे इसके शिकार की कानूनन मनाही है।

सिर की कलगी के कारण उत्तर भारत मे कही-कहीं इसे 'दूल्हा-पक्षी' भी कहते है । एक लोकगीत की इन पक्तियो पर ध्यान दीजिए—

चैत मास बन मोजरन लागे,
हुदहुद को ब्याह रचा है,
साहब बन दूल्हा बैठा है ।

हुदहुद

कोयल का बच्चा
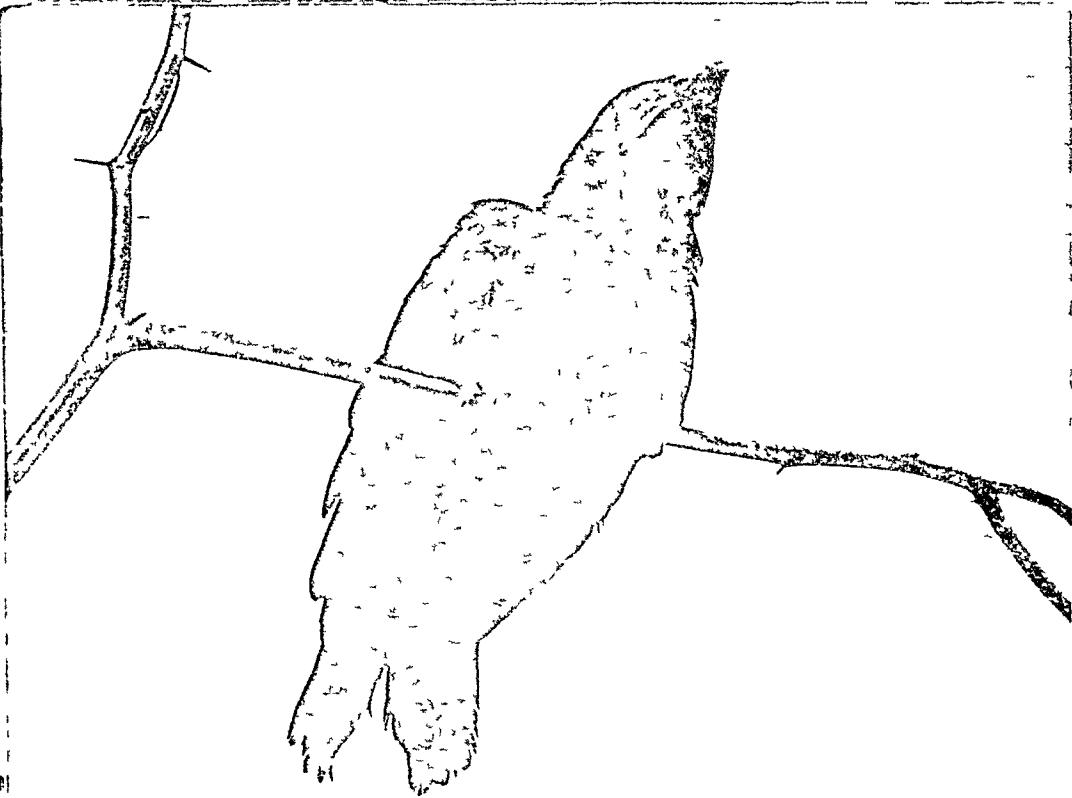
कोयल—नर और मादा

दा तीतर
ो के साथ

नीलकण्ठ

नीलकण्ठ का गला नीला नही होता फिर भी इसका नाम नीलकण्ठ क्यों पड़ा, यह बात समझ में नही आती। हाँ, इसके पंख नीले जरूर होते है और यही वजह है कि जब यह उड़ता है और इसके पंख पूरी तरह खुल जाते है तभी इसका वास्तविक सौदर्य निखरता है। इसके सिर से पीठ तक का रंग भूरा होता है, फिर हरी आसमानी और गहरी नीली लकीरें होती है। दुम और डैनों पर भी शुरू में आसमानी, फिर हल्का और अन्त मे गहरा नीला रंग होता है। पूँछ के बीच में दो पख हरे रंग के होते है। सीना ललछौह कत्थई रंग का होता है और उस पर छोटी-छोटी सीधी धारियाँ पड़ी होती है। पेट बादामी, दुम का निचला हिस्सा आसमानी रंग का होता है। आँख की पुतलियाँ भूरी, चोंच कालापन लिए हुए भूरी, तथा पॉव गहरे बादामी रंग के होते है।

नीलकण्ठ देखने में तो एक अतिशय सुन्दर पक्षी है, पर इसका स्वभाव सुन्दर नही है। बड़ा ही झगड़ालू पक्षी है यह। जब देखिए जोते हुए खेत में दो नीलकण्ठ लड़ रहे है और शोर मचा रहे है। बोली भी उसकी बड़ी कर्कश होती है। ऐसे तो कीड़े-मकौड़े बहुत से पक्षियों के आहार है पर यह जिस तरह दिन भर उनकी तलाश में

घूमता रहता है उस तरह शायद ही और कोई पक्षी घूमता हो। शायद इसी से इसके सम्बन्ध मे कहा गया है कि—

'नीलकण्ठ कीडा भखै, करै बधिक को काम।'

इसका तरीका यह है कि किसी वृक्ष, खम्भे या टेलीग्राफ के तार पर चुपचाप बैठा हुआ यह जोते हुए खेत या मैदान की ओर टकटकी बाँधे रहता है, और जैसे ही किसी कीडे को देखता है, बिजली की तरह उस पर टूटता है और उसे चोच मे दबा कर उड़ चलता है। 'ऊपर से अति भोले-भाले, भीतर से जल्लाद'—इसका नमूना यदि देखना हो तो नीलकण्ठ को देखे।

नीलकण्ठ की तीन मुख्य किस्मे इस देश मे पाई जाती है जिनमे कश्मीर मे पाया जाने वाला नीलकण्ठ सबसे सुन्दर होता है। पक्षियो के परो का सग्रह करने वाले बच्चो को इसके पर बहुत पसन्द है।

इसके अडे चीनी-मिट्टी से सफेद होते है और संख्या मे चार या पाँच होते है। अंडे देने का समय मार्च से जुलाई तक है। यह पेड के किसी कोटर मे अडे देता है।

दशहरे के दिन नीलकण्ठ का दर्शन शुभ माना जाता है। कहावत भी है—

नीलकठ कर दरसन होय,
मन वांछित फल पावे सोय।

पता नही ऐसे झगड़ालू पक्षी को यह सम्मान क्योंकर प्राप्त हुआ।

महलाठ

कई पक्षी भी आदमी ही की तरह ईमानदार होते हैं, और चोर भी। चोर पक्षियों का सरदार है महलाठ जो चोर विद्या को सबसे ऊँची विद्या मानता है और दिन-रात इसी चिन्ता में लगा रहता है कि किस तरह औरों के अंडे चुरा ले और उनसे अपनी उदर-पूर्ति करे। वृक्षों पर दिन भर घूमता रहता है और किसी घोंसले में अंडे को देखते ही उसे चुरा खाता है। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि चिड़िया घोंसले में बैठी हुई अंडा से रही है, तो यह घोंसले के नीचे से एक छेद करके अडा खा लेता है और उसे इसकी खबर भी नही होती। अक्सर घोंसले मे अंडा देखकर यह जोंक की तरह वहाँ जम जाता है। ब्रिटेन के भारत-स्थित वर्तमान हाईकमिश्नर श्री मैकडानल्ड का कहना है कि एक दिन उन्होने अपने दिल्ली के मकान के बाग में ऐसा ही एक दृश्य देखा था। एक पेड़ पर हारिल ने घोंसला बना कर अंडे दिए थे। महलाठ को इसकी गन्ध लग गई और वह वहाँ आ पहुँचा। यही नही, उसने बलपूर्वक

घोसले मे घुसन की कोशिश भी की। हारिल की मादा अकेली थी। फिर भी उसने इसे रोकने की भरपूर चेष्टा की। पर यह अपने उद्योग मे लगा रहा। मादा रोकती थी, यह घुसना चाहता था। घटो यह झगडा चलता रहा। अन्त मे नर के आ जाने से उसे हार कर वहाँ से निराश लौट जाना पडा।

महलाठ कद मे प्राय डेढ फुट लम्बा होता है जिसमे एक फुट लम्बी तो केवल पूँछ ही होती है। नर और मादा की शक्ल-सूरत मे कोई फर्क नही होता। इसका सिर, सीना और गर्दन धूमिल काले रग के होते है। अपने घर के आमने-सामने के दरख्तों पर हमे यह अक्सर नजर आता रहता है। यह पेड़ो पर चोर की तरह चुपके से आता है।

नाज के दाने से लेकर साँप-छछूदर तक यह सब कुछ खाता है। जब उत्तेजित होता है तो 'कोकली, कोकली' बोलना शुरू कर देता है और बड़ा शोर मचाता है।

इसका घोसला बडा बेढगा होता है जो यह शीशम, नीम, आम आदि के बडे दरख्तो पर फरवरी से जुलाई के बीच बनाता है। यदि कोई दूसरा पक्षी उस वृक्ष पर घोसला बनाने आता है तो बिगड खडा होता है। इसके अडो का रग भी जलवायु के मुताबिक होता है। ये कभी सफेद, कभी ऊदी और कभी मटमैले से होते हैं जिन पर बादामी, बैंगनी, हरी और लाल चित्तियाँपड़ी रहती है।

इसके बच्चे भी माँ-बाप की तरह शोर मचाने वाले होते हैं तथा बहुत दिनो तक उनके पीछे-पीछे घूमा करते है।

महलाठ को मुटरी, महताब और कोकैया भी कहते है। बगाल मे यह 'टाकचोर' नाम से प्रसिद्ध है जो इसकी आदत को देखते हुए उपयुक्त ही प्रतीत होता है।
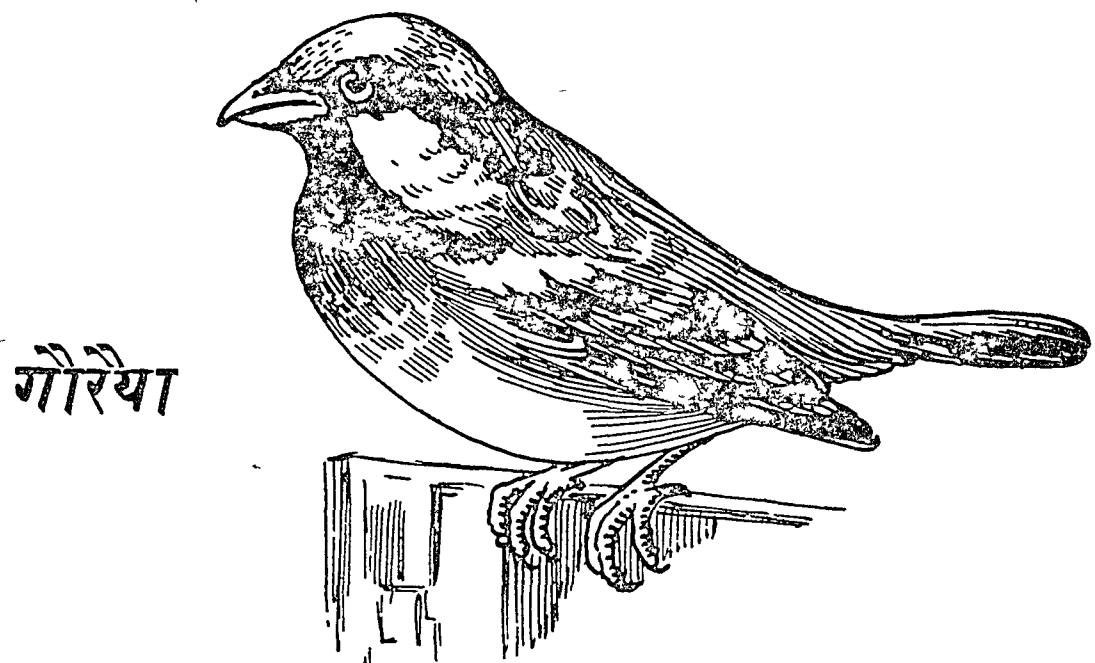
गौरैया

कौए की तरह ही गौरैया भी हमारा सुपरिचित पक्षी है । 'मान न मान, मै तेरा मेहमान' यदि कौए के सम्बन्ध मे सच है तो उससे भी ज्यादा यह गौरैया पर लागू होता है । कौए तो हमारे मकान की छत, ग्रॉगन ग्रौर बरामदे तक मे ही ग्राते है पर गौरैया तो बिना किसी हिचकिचाहट के हमारे घरो के भीतर घुस कर केवल खेल-कूद ही नही मचाती बल्कि पूरा डेरा दाल देती है ग्रौर उसमे इस इतमीनान के साथ रहती है, घोंसले बनाती है, ग्रडे देती है, बच्चो का लालन-पालन करती है मानो घर उनका ही हो ग्रौर हम केवल एक ग्रतिथि के नाते उसमे ठहरे हुए हो ।

ग्रक्सर जब हम ग्रपने कमरे मे बैठे हुए कुछ लिखते-पढते रहते है तब ये ऊपर से घास-फूस के टुकड़े हमारे सिर पर या मेज पर गिरा डालती है ग्रौर जब हम इससे परेशान हो कर ग्रपना क्रोध व्यक्त करते है तो ये उछल-उछल कर खूब शोर मचाने लगती है,

मानो हमारी इस बेइज्जती और हाथ-पाँव पटकने पर जोरो से हँस रही हों। यही नही, कभी-कभी ये हमारी मेज पर भी उतर आती है और बड़ी बेफिक्री के साथ उस पर कूद-फाद मचाती है, चीची-चूँ-चूँ करती है और हमारी शान्ति भंग कर डालती है। वे इस बात की तनिक भी परवाह नही करती कि सामने कोई बैठा हुआ लिख या पढ रहा है। ढिठाई में ये कौए से किसी भी कदर कम न होकर कुछ बढ़ी-चढ़ी ही है।

गौरैया भारतवर्ष के सभी हिस्से में पाई जाती है, समतल क्षेत्र और ऊँचे पहाड़, दोनो ही इसके लिए समान है। पर खास कर गृह-गौरैया, जिन्हे अग्रेजी मे House Sparrow कहते है, उन्ही जगहो में रहना पसन्द करती है जहाँ आदमियो की आबादी है चाहे वह राजस्थान का गर्म इलाका हो या हिमालय की सर्द जगह।

इनकी तीन उप-जातियाँ इस देश मे मुख्य रूप से पाई जाती है। एक वह जो दिन-रात हमारे घरो मे डेरा डाले रहती है। दूसरी वह जो पेड़ के सूराख मे अपना घोसला बनाती है। तीसरी तूती। पहली के नर के सिर का ऊपरी हिस्सा सलेटी, चोच से आँखो के बाल तथा गर्दन के नीचे छाती तक काला रहता है। पीठ, डैने, कत्थई भूरे रंग के होते है जिन पर छोटी-छोटी काली-सफेद धारियाँ बनी रहती है। दुम गहरी भूरी होती है। गाल तथा पेट पर मैली सफेदी, पर कुछ सफेद, कुछ बादामी, कुछ भूरे रंग के मिले-जुले होते है।

मादा के शरीर का गर्दन से लेकर नीचे का हिस्सा नर जैसा, ऊपर का भूरा तथा डैने गहरे भूरे रंग के होते है जिन पर काली-

सफेद धारियाँ बनी रहती है । आँख के ऊपर एक हल्की बादामी रेखा होती है । इनकी आँख की पुतलियाँ, चोच और पाँव भूरे रंग के होते हैं । चोंच मोटी होती है । नर की भूरी चोच गर्मियो में काली हो जाती है ।

दूसरी जाति की गौरैया वह है जिसे वृक्ष-गौरैया के नाम से पुकारते है तथा जिसके नर-मादा की सूरत-शक्ल गृह-गौरैये के नर जैसी होती है। किन्तु कद मे यह उससे छोटी होती है । सिर का रंग सलेटी न होकर गुलाबीपन लिए हुए चाकलेट जैसा होता है । गाल के सफेद स्थल पर एक काला धब्बा होता है । यह साधारण गौरैयों की तरह ढीठ नही होती और न उतना शोर ही मचाती है । दार्जिलिग आदि पहाड़ी जगहों मे यह अधिकतर पाई जाती है ।

तीसरी जाति या उपजाति की गौरैया को तूती कहते है । हल्का बादामी रंग, बाहों पर अखरोट के रग का धब्बा, डैनो पर दो सफेद लकीरें तथा गले का कुछ हिस्सा नारगी-पीला । यही इसकी रूप-रेखा है । मादा के गले पर पीलापन नही होता । यह भी पेड़ों पर ही एक साथ कई रहती है तथा इनके गले मे मिठास और सुरीलापन होता है । आवाज़ पतली होती है जिसके कारण कहावत बन गई है—

'नक्कारखाने में तूती की आवाज ।'

लोग इसे बड़े शौक से पिजरे में पालते भी है जहाँ यह बड़े आनन्द के साथ गाया करती है । उर्दू शायरी मे इसकी जगह-जगह चर्चा है ।

गौरैया ऐसे तो साल भर अंडे देती है पर अधिकतर फरवरी

से मई तक के महीनो मे । एक बार मे पाँच-पॉच, छ -छ अडे दे डालती है जिनका रग हल्का हरापन लिए हुए सफेद होता है। इस पर कत्थई चित्तियाँ भी बनी रहती है। इनके बच्चो का सबसे बड़ा शत्रु एक प्रकार की मक्खी है जो इनके घोसले मे ही घोसला बनाकर इनके बदन से चिपक जाती है और इनका खून पी जाती है।

गृह-गौरैया हमारे घरो मे घोसला बना डालती है। घास-फूस का छोटा सा घोसला होता है जो अक्सर ऊपर से हमारे सिर पर आ गिरता है। कभी-कभी घोसले से बच्चे भी हमारे बदन पर आ गिरते है। मुझे स्वयं कई बार यह मुसीबत उठानी पडी है।

ये कभी-कभी ऐसी जगहो पर अपने घोसले बना डालती है जिसकी आदमी कल्पना भी नही कर सकता है। १९४० की बात है। मै हजारीबाग जेल मे था। वहाँ टोपियों की जरूरत तो होती नही, सो मैंने अपनी गाधी-टोपी घर मे एक जगह पर रख छोडी थी। एक दिन सहसा मेरी नजर उस पर गई तो देखा कि गौरैयो ने उसके भीतर घोसला बना डाला है। यही नही, उसमे अंडे तक दे डाले थे। मै बडे हैसबैस मे पड़ा। सिर्फ घोसले होते तो उन्हे निकाल फेकता पर इन अडो का क्या करूँ! अन्त मे मैंने कुछ न करने का निश्चय किया तथा जब तक अडो से निकल कर बच्चे उडने लायक न हो गए, टोपी ज्यों की त्यो पडी रही।

एक और मौके पर एक नवजात शिशु ऊपर शहतीर पर बने हुए घोसले से नीचे आ पडा और मेरे सामने यह समस्या उठ खडी हुई कि उसे घोसले मे किस तरह वापस भेजा जाए। अन्त मे जेल

के वार्डर ने हमारे अनुरोध पर सीढी के सहारे उसे पुन. ऊपर पहुँचाया ।

गौरैयों को नहाना बहुत पसन्द है । अक्सर आप देखेंगे, सुबह होते ही ये जल मे नहा रही है । शायद इसीलिए देहात मे
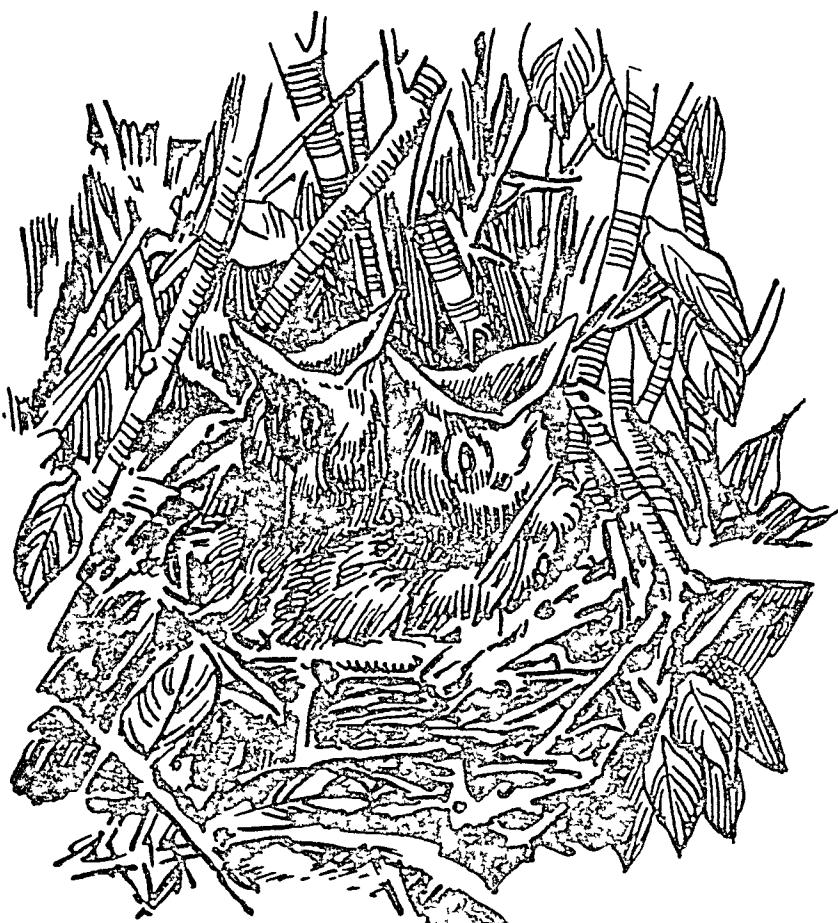
लोग इन्हें पक्षियो मे ब्राह्मण मानते है । कभी-कभी ये धूल मे भी नहाया करती है । घाघ* का कथन है कि यदि गौरैया धूल मे नहाए तो समझ लीजिए कि अब जल्दी ही वर्षा होने वाली है ।

*एक लोक-कवि जिसकी कहावते, खासकर खेतीवाडी से सम्बन्ध रखने वाली, भारत मे मशहूर है ।

गौरैयों की भी लडने वाली प्रकृति है। जब देखिए इनके बीच दंगल मचा हुआ है, कभी दो, कभी चार, कभी छ एक साथ लड़ रही है। पहलवानो की तरह उठ-उठ कर ये लडती हैं। यही नही, कभी-कभी लडती हुई ये हमारी मेज, पलग या बदन पर भी आ गिरती है। लडने का इन्हे इतना शौक है कि जब-तब झूठी लडाइयाँ भी लड़ती रहती हैं।

तूती को छोडकर बाकी जाति की गौरैयो को पिंजरे मे पालने की इस देश मे परिपाटी नही रही है। पर पुराने जमाने में रोम और यूनान मे लोग इन्हे भी बड़े शौक से पाला करते थे। गौरैया हर देश मे पाई जाती है, चाहे वे यूरोप के हो या अफ्रीका अथवा एशिया के। किन्तु इनके रग-रूप मे फर्क होता है।

उल्लू

उल्लू तथा अन्य पक्षियों में स्वभाव ही का नही, बनावट का भी काफी फर्क है।

आम तौर पर उल्लू दिन मे नही निकलते, पेड़ों के किसी झुरमुट में या किसी पुराने मकान और खंडहर के कोने में जा बैठते है। शाम होते ही बाहर निकल आते है तथा एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर प्रेतो की तरह उड़ने लगते है। पर यह कहना कि उल्लू को दिन मे नही सूझता, गलत है, क्योकि कई बार दिन की तेज़ रोशनी में भी ये इधर-उधर उड़ते नजर आते है। हाँ, इतना ज़रूर है कि दिन की रोशनी इनकी आँखो को भली नही लगती।

उल्लू अपने शिकार को सीधे निगल जाते है, नोंच-नोंच कर नहीं खाते। और चिड़ियों की तरह यह चंचल नही होते। किसी आवाज़ के कान में पड़ते ही तुरन्त भाग खड़े नही होते।
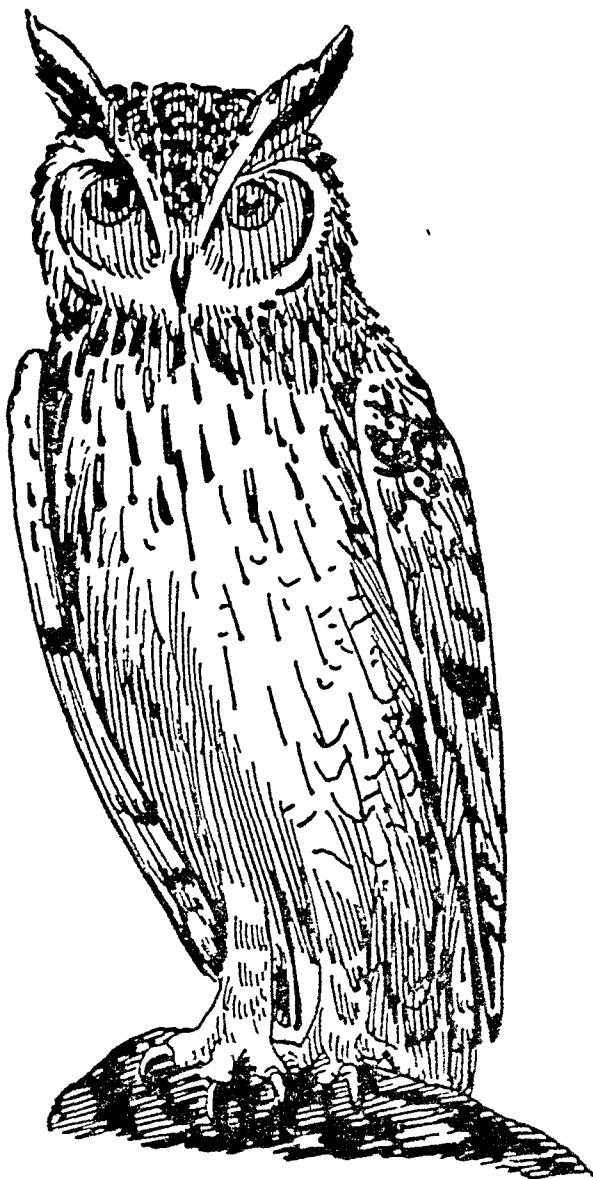
इन पर यदि आप ढेले भी मारे तो भी ये ऐसे बैठे रहेगे मानो इन्हे किसी बात की परवाह नही है। फिर कुछ देर बाद आपकी ओर क्रोधभरी आँखो से देखते हुए धीरे से उठ कर चल देगे।

इनकी बनावट मे भी कुछ विशेषताएँ है जो इस प्रकार है—

१ इनकी आँखे अन्य पक्षियो की तरह बगल मे नही होती, मनुष्य की तरह सामने होती है। आँखे काफी बडी और गोल होती है।

२ पीछे देखने के लिए यह गर्दन घुमा सकते है जो और चिडियाँ नही कर पाती।

३ इनके पर पश्मीने की तरह अत्यन्त मुलायम होते है और इसीलिए इनके उडने मे आवाज नही होती।

४ इनके कान बड़े और खुले होते है जबकि और पक्षियो के कान बालो से ढके होते है।

उल्लू की भी अनेक किस्मे है। मुख्य ये है —

१—अन्न-संग्रहालय का उल्लू . इसका रग ऊपर सुनहला बादामी, नीचे सफेद होता है। नर-मादा एक-से होते है। यह अधिकतर पुराने मकान के खडहरो मे निवास करता है।

रात मे एक मनहूस-सी आवाज करता हुआ यह मकान की छत के एक हिस्से से दूसरे हिस्से पर घूमता रहता है। इसका बोलना अशुभ माना जाता है।

चूहे के लोभ मे जहाँ अन्न का भडार होता है, वही रहना यह ज्यादा पसंद करता है।

२—मत्स्य उल्लू इसे मछली बहुत पसद है। अतएव जल के किनारे किसी वृक्ष या मकान पर यह रहता है। सिर बडा, ऊपर के

पर गहरे कत्थई रग के, डैने और दुम भूरे, गला सफेद होता है। सिर के ऊपर उठे हुए पर के गुच्छे होते है जो लम्बे कान जैसे लगते है। इसके पंजों में नुकीले काँटे होते है जो मछलियो को जकड़ कर पकड़ लेते हैं।

३—**सींगदार उल्लू** : इसके सर पर दो काली-काली कलगियाँ होती हैं जो सीग जैसी लगती है।

४—**खूंसट या चितकबरा उल्लू** : इसके ऊपर के बाल बादामी होते है जिन पर सफेद दाग होते है। नीचे के पर बादामी धब्बो से भरे हुए सफेद होते है। आँख पीली होती है। वृक्ष के कोटर, पुराने मकानो की सूराख मे यह घोसला बनाता है । अक्सर शाम को बाहर निकल कर खम्भो अथवा टेलीग्राफ के तारो पर कीड़े-मकोडे या छोटे चूहो की प्रतीक्षा मे बैठा रहता है। इस देश का यह सबसे प्रसिद्ध उल्लू है और तादाद मे भी सबसे अधिक है। इसे जगल-झाड़ी की बजाय गाँव और शहर ज्यादा पसद है। बहुधा यह हमारे बरामदे मे आकर लैम्प पर उडते हुए पतंगो को पकड़-पकड़ कर खाने लगता है। बंगाल मे इसका घर मे आना शुभ मानते है ।

खूसट के कद का ही एक और छोटा-सा उल्लू होता है जिसे चंडूल या चुगद कहते है। इसके ऊपर का रंग बादामी, नीचे का सफेदी लिए हुए हल्का बादामी होता है। आँखो के ऊपर सफेद भौह होती है तथा दोनों कानों के ऊपर उठे हुए पंख होते हैं जो कान जैसे लगते है।

उल्लू स्वयं घोसला न बनाकर अधिकतर गीध आदि अन्य पक्षियों के बनाए हुए घोंसले पर कब्जा कर लेते हैं और उसी मे

है। कीडे-मकोडे, दीमक और नाज के दाने इनके आहार है। जमीन मे गढा बनाकर उसी मे ये साल भर अडे देते है जो सख्या में ६ से ९ तक तथा रग मे हल्के बादामी होते है। बच्चे मुर्गी के बच्चो की तरह अडो से निकलते ही चलना शुरू कर देते है।

इस देश मे तीतर लडाने का रिवाज बहुत पुराना है। पहले यह ज्यादा था। अब कम है, फिर भी, शायद ही कोई ऐसा नगर होगा---खासकर उत्तर भारत मे---जहाँ तीतर लडाने वाले न मिले। कई शहर और गाँव तो ऐसे मिलेगे जहाँ तोते के पिजरो की तरह घर-घर मे तीतर के पिजरे टगे होगे। यही नही, अक्सर तीतर अपने पालने वाले के पीछे-पीछे दौड़ते चलते है। आगे खाली पिजरे के साथ पालने वाला, पीछे तीतर। मुर्गे की तरह तीतर खूब जोरो से लडते है। अपने-अपने पिजरे से जब कभी दो लडाकू तीतर बाहर निकलते है, जोरो से 'पतीला, पतीला' बोलना शुरू कर देते है और ताल ठोक कर लडने के लिए तैयार हो जाते है। फिर इशारा पाते ही एक-दूसरे से जूझ पड़ते है, हटाए नही हटते। जब एक हार कर गिर जाता है, तब दूसरा विजयी पहलवान की तरह छाती फुला कर उसके पास खडा हो जाता है। इनकी लड़ाई देखने के लिए लोग सैकडो की सख्या मे इकट्ठे होते है और इन पर बाजी लगाते है। दिल्ली मे ये दगल आए दिन हुआ करते है। लडते चितकबरे तीतर है, काले नही। इनके पिजरे को ज्यादा समय कपड़े से ढँक कर रखते है।

तीतर को अपने बच्चो से बडा प्रेम है। सारा परिवार ज्यादातर साथ-साथ चला करता है। किसी खतरे के आने पर माँ-बाप झाड़ी मे छिप जाते है, बच्चे इस तरह खड़े हो जाते है मानो

मिट्टी की मूर्तियाँ हो। खतरे के टलते ही सब फिर साथ हो जाते हैं। तीतर मे उड़ने की ताकत कम है, थोड़ा ही उड़ कर थक जाता है। इसीलिए कहावत बन गई है कि तीन उड़ान में तीतर पकड़ाता है।

मोर

मोर एक ऐसा पक्षी है जिस पर इस देश को गर्व है। दक्षिण के कुछ स्थानो को छोड कर इस देश के बाकी सभी हिस्सो मे यह पाया जाता है। भारतवर्ष मे ही यह मुख्य रूप से पाया जाता है, यह हम नि सकोच भाव से कह सकते है। इसकी सुन्दरता अपूर्व है। शाहजहाँ बादशाह जो सुन्दरता का एक सबसे बडा पारखी हो गया है, इससे इतना प्रभावित हुआ था कि करोडो रुपये खर्च करके उसने अपने लिए एक 'मयूर-सिहासन' बनवाया था जो 'तख्ते-ताऊस' के नाम से विख्यात है। इसम बडे कीमती मणि-माणिक्य जडे हुए थे। देखने मे यह हू-बहू दुम उठाए नर-मयूर जैसा लगता था। भगवान कृष्ण इसकी पूँछ के पर को बाल्य-काल मे हमेशा सिर पर धारण किए रहते थे, जैसा कि इस पक्ति मे वर्णित है—

'मोर-मुकुट, कटि काछनी, कर मुरली, उर माल।'

नर मोर सुन्दर होता है पर मादा भद्दी होती है। नर के सिर पर छोटे-छोटे हरे और नीले घुँघराले पख होते है जिस पर एक सुन्दर कलगी होती है। सिर पर हरे-नीले चमकीले रोएँ होते है। गर्दन गहरी चमकीली नीली होती है। ऊपर का हिस्सा सलेटी
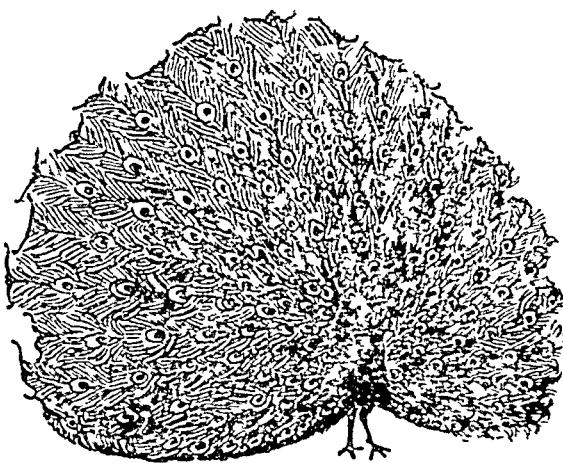
हरा रहता है, दुम का ऊपरी हिस्सा भूरे रग का तथा सीना और निचले सभी हिस्से चमकीले हरे रग के होते है। दुम के पर लम्बे और बड़े सुन्दर होते है जिनके सिरे पर गोलाई होती है और रंग गाढा नीला होता है। गोले में एक अर्ध चन्द्र की आकृति का चिन्ह बना हुआ होता है।

आँखे भूरी, चोंच सीग के रग की तथा पाँव सलेटी भूरे होते है। मोर के पैर बडे कुरूप होते है। कहावत है कि जब मोर नाचता-नाचता अपने पैर को देखता है तो दु ख से नाचना बन्द कर देता है।

असम के जंगलो मे ऐसे मोर भी पाए जाते है जो रग मे बिल्कुल सफेद होते है।

मोरनी की पूँछ लम्बी नही होती। इसके रग मे भूरापन तथा बादामीपन अधिक है। एक मोर के साथ कई मोरनियाँ रहती है जिनके बीच मे यह मस्त होकर नाचा करता है। मोर का नाचना जगत प्रसिद्ध है। आकाश मे बादल देखकर या उसका गर्जन सुनकर यह आनन्द से भर उठता है और नाचना शुरू कर देता है। नाचते वक्त यह पूँछ को उठाकर गोलाकार खडा कर लेता है। तब यह गोल फलक-सा लगने लगता है। और तब इसमें चमक-दमक से भरी हुई हजारो 'आँखें' निकल पडती है। एक-एक मोर-चन्द्रिका में 'नीलम' और 'फिरोजा' चमकने लगते है।

मोर जल्दी ही पालतू हो जाता है। पालनेवाले के पुकारते ही यह उसके पास आ जाता है। इसका आहार अन्न और कीडे-पतगे, छिपकलियाँ आदि तो है ही, यह साँप तक को खा जाता है। साँप

इसकी बोली सुनकर ही डर कर भाग खडे होते है। इसकी बोली बडी तीव्र होती है और ऐसा लगता है मानो यह पुकार-पुकार कर अपना नाम ही उचार रहा हो—मयूर, मयूर।

मोरनी जमीन पर ही किसी झाडी मे अडे दे डालती है जिनकी सख्या ५ से ७ तक होती है। कभी-कभी पुरानी इमारतो की छत पर भी यह अडे देती है। जून से अगस्त तक उसके अडा देने का समय है। अडे का रग हाथी-दाँत जैसा सफेद होता है।

पानी के किनारे झाडियो मे रहना इसे ज्यादा पसद है। राजस्थान, ब्रज, हरियाना तथा चित्रकूट मे ये झुड के झुड नजर आते है। कभी-कभी ५० या १०० तक एक साथ। ११वी सदी मे ईराक आदि देशो मे भारत से मोर मगवा कर मोर की नस्ल तैयार करने की कोशिश हुई, पर ये मोर भारत के मोर जैसे सुन्दर नही हो सके। कहा जाता है कि इन्हे सम्राट सिकन्दर पहले-पहल भारत से यूरोप ले गया था।

जैसे कोयल अपने गान के लिए मशहूर है, वैसे ही मोर नृत्य के लिए। अतएव इस पुस्तक का आरम्भ कोयल से और अन्त मोर से किया गया है। इन दोनो पर ही हमे बहुत नाज है तथा—

गाते और नाचते लडके,
हो आनन्द विभोर,
कोयल जब तरु पर गाती है,
और नाचता मोर।

अर्थात् इस देश के बच्चो को ये दोनो ही बहुत प्यारे है।

उपसंहार

हमारे सुपरिचित पक्षियो की यह कथा समाप्त हुई । इन पक्षियो के अलावा और भी हजारो किस्म के पक्षी है, जिनसे आगे चलकर परिचय प्राप्त कर तुम्हे आनन्द भी होगा और विस्मय भी । तुम देखोगे कि फूलो की भाति ये पक्षी भी तरह-तरह के रंग-रूप और आकार के है, तथा इनके नित्य प्रति के जीवन से तुम शिक्षा भी ग्रहण कर सकोगे ।

कहते है एक बार स्काटलैण्ड का राजा ब्रूस कई युद्धों मे हार कर सफलता की आस छोड़ कर कही छुपा हुआ था । सामने दीवार के सहारे एक मकडी जाल बुन रही थी । जाल बार-बार टूटता था, पर वह हार न मानकर अपने काम मे जुटी हुई थी । अन्त में वह सफल हो गई । इसे देखकर राजा ब्रूस को भी हिम्मत बंधी और वह फिर दुश्मनों से जाकर लडा । इस बार उसने उन पर विजय पाई । उस मकडी और राजा ब्रूस की तरह पक्षी भी न हिम्मत हारते है, न थकते है । अपने भोजन की तलाश मे वे कभी-कभी तो मीलों दूर चले जाते है और फिर शाम को अपने बसेरे पर लौट कर बच्चों को दाना खिलाते है। सुबह होते ही फिर अपने काम मे जुट जाते है । सदा उमग से भरे हुए प्रसन्न रहते है । जब तक बच्चे उड़ने लायक न हो जाए, उन्हे नियम से दाना देते रहते है, एक दिन भी उन्हे भूखा नही रहने देते । अपने कर्त्तव्य का पालन बड़ी अच्छी तरह करते है । सन्तान रक्षा में बहुधा देखा गया है कि

पक्षी अपनी जान की भी परवाह नही करते। एक घटना मेरी आखो के सामने घटी। 'गुलमोहर' के वृक्ष पर पीलक पक्षी का एक घोसला था। नर-मादा घोसले के पास बैठे हुए शिशुओ की निगरानी कर रहे थे। इतने मे एक कौआ वहा आ धमका। बस पीलक की त्यौ-रियाँ चढ गई और वह हुकारता हुआ कौए पर टूटा। कौआ भाग चला। पीलक ने उसका पीछा किया तथा उसके अगो पर चोच मारता हुआ उसे वह बाग की सरहद के पार तक भगा आया। फिर लौटकर वह इस तरह बैठा, जैसे दगल मे विजयी कोई पहलवान बैठा हो। जिस तरह पक्षी अथक परिश्रम और उत्साह से घोसला बनाते और अपने बच्चो की रक्षा करते है, वैसे ही उमग के साथ हमे भी अपने देश को उन्नत बनाने मे हाथ बॅटाना चाहिए और उसकी रक्षा करनी चाहिए।

इस पुस्तक मे तुमने देखा होगा कि कई पक्षियो मे आपस का भाईचारा और मेल ऐसा है कि किसी दुश्मन के आते ही वे सभी एक हो जाते है और मिलजुल कर उसका मुकाबला करते है। और इस तरह हमे मानो बता देते है कि आपस के मेल मे कितना बल और सफलता भरी हुई है।

अधिकाॅश पक्षी दल बॉध कर रहते है, अलग-अलग खिचडी नही पकाते। एक-दो नही, हजारो की सख्या मे वे एक स्थान से दूसरे स्थान को आते-जाते रहते है। रात का बसेरा लेने के लिए वे प्रायः रोज शाम को झुड बॉध कर आकाश मे उडते नज़र आते है। यही नही, भोजन की तलाश मे जब तिब्बत, साइबेरिया आदि देशो की झीले जाडों मे बर्फ से ढक जाती है, तब वहाॅ के जल पक्षी हिम्मत हार कर नही बैठ जाते, बल्कि

लाखों की तादाद में भारत जैसी दूर की जगहो में आ पहुंचते है। फिर गर्मी के दिन आते ही वे भारत से वही वापस लौट जाते है। आश्चर्यजनक है इनका हजारो मील के रास्ते का ज्ञान। ये कभी भी अपने निश्चित मार्ग से भटकते नही, दिन रात उड़कर अपनी जगह पर लौट जाते है और वहाँ अडे देकर पुन अपना घर बसा लेते है। इनसे हमे हिम्मत और बहादुरी के सबक सीखने चाहिएं।

जाति के नाम पर धब्बा न लगे, इसके लिए पक्षी सदा सतर्क रहते है। उदाहरण के लिए कौए को लीजिए। यदि कोई कौआ ऐसा बुरा काम कर बैठता है जो वश पर धब्बा लगाने वाला होता है, तो बाकी कौए उसे चोच से मार-मार उसका प्राण तक ले डालते है।

कितना संतोष भरा है इन पक्षियो का जीवन! ये कभी आवश्यकता से अधिक किसी चीज की इच्छा नही करते। जितना दाना मिल पाया, उसी पर गुजारा करते है। कभी भी लोभ या असतोष की आग मे जलते नही। किसी कवि के इस कथन का वास्तविक मर्म मानो पक्षियों ने ही समझा है --

गज-धन, गो-धन, बाजिधन
और रतन-धनखान,
जब आवे संतोष-धन
सब धन धूरि समान।

महात्मा कबीरदास ने भी कहा है कि हमें दूसरो की घी चुपडी हुई रोटियाँ देखकर जी नही ललचाना चाहिए। अपनी रूखी-सूखी रोटियो से ही संतोष करना, चाहिए। बेशक पक्षी अपने आचरण से कबीरदास के इस वचन का समर्थन करते है तथा हमारे सामने इसका उच्च आदर्श रखते है।